BAMI-301

संगीत विज्ञान

बी0ए0 संगीत(स्वरवाद्य) – तृतीय वर्ष

संगीत विभाग – मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMI-301

संगीत विज्ञान

बी0ए0 संगीत(स्वरवाद्य) – तृतीय वर्ष

संगीत विभाग – मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी – 263139
फोन नं0 : 05946–286000/01/02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in** वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 गोविन्द सिंह
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 सत्यभान शर्मा
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
दयालबाग विश्वविद्यालय,
दयालबाग

श्री सतीश श्रीवास्तव
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0जी0 कालेज, कानपुर

डॉ0 गीता जोशी
प्रधानाध्यापिका,
महिला महाविद्यालय,
सतीकुण्ड, हरिद्वार

डॉ0 विजय कृष्ण(आ.स.)
पूर्व वरि0 अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व वरि0 अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	**डॉ0 महेश पाण्डे**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 1, 2, 3 व 4
2.	**डॉ0 निर्मला जोशी एवं श्री सतीश श्रीवास्तव**	द्वितीय खण्ड़ – इकाई 1
3.	**डॉ0 रेखा शाह**	द्वितीय खण्ड़ – इकाई 3
4.	**डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी**	द्वितीय खण्ड़ – इकाई 2 तृतीय खण्ड़ – इकाई 1 व 2
5.	**डॉ0 विजय कृष्ण**	तृतीय खण्ड़ – इकाई 3

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2013, पुनर्प्रकाशन–जुलाई 2016
प्रकाशक : निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : **books@uou.ac.in**

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

बी0ए0 संगीत(स्वरवाद्य) – तृतीय वर्ष
संगीत विज्ञान – बी0ए0एम0आई0–301

खण्ड 1 – भारतीय संगीत का इतिहास, श्रुति एवं स्वर का विस्तारपूर्वक वर्णन व सांगीतिक शब्दों की व्याख्या

इकाई 1 – भारतीय संगीत का इतिहास–मध्यकाल के उपरान्त से आधुनिक काल तक। **पृष्ठ 1–12**

इकाई 2 – भारतीय संगीत में थाट पद्धति। **पृष्ठ 13–22**

इकाई 3 – श्रुति एवं स्वर की व्याख्या प्राचीन, मध्यकालीन व वर्तमान विद्वानों के अनुसार; दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय। **पृष्ठ 23–38**

इकाई 4 – मार्गी संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविरभाव, तिरोभाव, काकु व तान। **पृष्ठ 39–53**

खण्ड 2 – राग विस्तार, जीवन परिचय एवं निबन्ध लेखन

इकाई 1 – स्वर वाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली; पाठ्यक्रम के रागों का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना। **पृष्ठ 54–66**

इकाई 2 – संगीतज्ञों(उ0 विलायत खां, उ0 इलियास खां, पं0 हरिप्रसाद चौरसिया, शरन रानी व उ0 अमजद अली खां) का जीवन परिचय। **पृष्ठ 67–72**

इकाई 3 – संगीत सम्बन्धी विषयों पर निबन्ध। **पृष्ठ 73–80**

खण्ड 3 – स्वरलिपि व तालिपि में लिखना

इकाई 1 – पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत(तोडों सहित) को लिपिबद्ध करना। **पृष्ठ 81–93**

इकाई 2 – पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत(तोडों सहित) को लिपिबद्ध करना। **पृष्ठ 94–106**

इकाई 3 – पाठ्यक्रम की तालों का परिचय एवं उनको लयकारी(दुगुन, तिगुन व चौगुन) सहित लिपिबद्ध करना। **पृष्ठ 107–115**

इकाई 1 – भारतीय संगीत का इतिहास(मध्यकाल के उपरान्त से आधुनिक काल तक)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मध्यकाल में संगीत
  1.3.1 मुस्लिम प्रवेश युग
  1.3.2 संगीत ग्रंथ
1.4 आधुनिक काल
  1.4.1 संगीत विकास के कार्य
  1.4.2 वर्तमान शिक्षा का स्वरूप
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के प्रथम खण्ड की पहली इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप बता सकते हैं कि प्राचीन काल में संगीत कितना महत्वपूर्ण एवं समृद्ध विषय के रूप में प्रचलन में था। उस समय के अध्ययन से संगीत सम्बन्धी अनेक सूत्रों का पता चलता है जिनके द्वारा उस युग में संगीत की विभिन्न विधाओं, प्रयोगों एवं जनमानस में संगीत के प्रति अनुराग पर प्रकाश पड़ता है।

इस इकाई में मध्यकाल के उपरान्त से आधुनिक काल तक के भारतीय संगीत के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में उस काल में संगीत की स्थिति, गायन, वादन की विभिन्न शैलियों एवं उनका प्रयोग के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मध्यकालीन एवं आधुनिक कालीन समय में उपलब्ध सांगीतिक सामग्री को समझ सकेंगे तथा प्राचीन संगीत से इन कालों का सम्बन्ध स्थापित कर तुलनात्मक अध्ययन भी कर सकेंगे। आप इन कालों में उपलब्ध संगीत शिक्षा के स्वरूप, विभिन्न शास्त्रों एवं प्रसिद्ध संगीतज्ञों की समृद्ध परम्परा को भी समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि मध्यकाल एवं आधुनिक काल में प्रचलित गायन, वादन की विभिन्न शैलियों एवं उनका प्रयोग किस रूप में किया जाता था।
- समझा सकेंगे कि वर्तमान समय में संगीत की जो स्थिति एवं स्वरूप है वह मध्यकाल के पश्चात किस प्रकार से परिवर्तित होता आया है।
- बता सकेंगे कि मध्यकाल के समय में मुख्य रूप से भारतीय संगीत की पारम्परिक शैली में विदेशी शासकों द्वारा अनेक प्रयोग किए गए जिससे संगीत के क्षेत्र में एक नवीन स्वरूप का आविर्भाव हुआ।
- बता सकेंगे कि आधुनिक काल तक प्रवेश करते–करते भारतीय संगीत ने सांस्कृतिक, सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक दृष्टि से किस स्वरूप को ग्रहण किया।

1.3 मध्यकाल

भारत एक प्रफुल्लित और समृद्धशाली देश होने के कारण विदेशियों ने इस पर हमले शुरू कर दिए। इन हमलों का मुख्य उद्देश्य भारत को लूटना था। इन हमलावरों में गज़नवी ने चार बार हमले किए। इन कारणों से भारत की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था नष्ट हुई। भारतीय जन–साधारण का जीवन अत्यधिक दुखदायी हो गया। इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति और सभ्यता की मौलिक परम्परा को नष्ट करके अपनी संस्कृति और सभ्यता का प्रमुख अंग, संगीत भी उसकी चपेट में आ गया। साहित्य और संगीत का आध्यात्मिक वातावरण श्रृंगारित प्रवृत्ति में बदल गया। 11वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक चाहे विदेशियों का राज्य रहा हो या फिर किसी और का, परन्तु फिर भी इस काल में बहुत सारे सांगीतिक ग्रन्थों की रचना की गई। जैसे–संगीत रत्नाकर, गीत गोविन्द, राग तरंगिणी(लोचन), स्वरमेलकलानिधि(रामामात्य), रागमाला, राग मंजरी, राग विबोध(पुण्डरीक विठ्ठल), संगीत पारिजात(अहोबल), संगीत दर्पण(पं. दामोदर), हृदय कौतुक(हृदय नारायण), अनूप संगीत रत्नाकर(अनूप), संगीत विलास, अनुप्रकाश(भाव भट्ट) इत्यादि।

1.3.1 मुस्लिम प्रवेश युग – मध्यकाल के अन्तर्गत मुख्यतः खिलजी, तुगलक, लोधी और मुगल शासकों का राज्य रहा। संगीत को ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. संगीत कलाकार
2. सांगीतिक ग्रन्थ
3. संगीत के लिए प्रोत्साहन

- **खिलजी काल में संगीत कलाकार** – खिलजी काल में अमीर खुसरो और गोपाल नायक जैसे उच्चकोटि के संगीत कलाकार थे।

- **अमीर खुसरो** – यह अलाउद्दीन के दरबार के प्रमुख रत्न में से थे। खुसरो फारसी के प्रसिद्ध कवि और महान संगीतकार थे। खुसरो ने भारतीय संगीत पर ईरानी संगीत का सुमेल किया। "Hazrat Amir Khusro introduce a number of Ragas by combining the Persian Muqqams in Indian Ragas." इसमें से साजगिरी सरपरदा, यमन कल्याण, रात की पूरिया, पूर्वी आदि का नाम विशेष तौर पर वर्णन योग्य है।

विशेष सांगीतिक शैलियां : अमीर खुसरो को कौल, कलवाना, कव्वाली, गज़ल और तराना आदि का आविष्कारक माना जाता है।

विशेष तालें : फरोदस्त, पश्तो, सवारी, सूलफाक्ता, आड़ाचौताल, झूमरा आदि तालों का आविष्कारक भी अमीर खुसरो को माना जाता है।

वाद्य : सितार और तबले के आविष्कार का श्रेय भी अमीर खुसरो को ही दिया जाता है। इसके बारे में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। यदि इनको आविष्कारक न भी माना जाए तो भी यह जरूर कहा जा सकता है कि अमीर खुसरो ने इन वाद्यों के प्रचार के लिए विशेष यत्न किए। अमीर खुसरो ने अपना सारा जीवन ही संगीत के लिए समर्पित कर दिया।

- **गोपाल नायक** – खिलजी काल के दूसरे संगीतकार गोपाल नायक थे। गोपाल नायक देवगिरि राज्य के प्रसिद्ध गायक थे। 1294 ई. में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर हमला किया और विजय प्राप्त की। विजय प्राप्त करने के बाद वह, वहां के बहुत सारे गायकों को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया क्योंकि वह संगीत–प्रेमी था। गोपाल नायक संगीत के क्रियात्मक पक्ष में ही उत्तम नहीं थे बल्कि संगीत के सैद्धान्तिक पक्षों का भी भलीभांति ज्ञान रखते थे। इन्होंने ख्याल शैली के विकास के लिए बहुत यत्न किए। बडहंस, पीलू आदि रागों का आविष्कारक इनको माना जाता था। गोपाल नायक छन्द प्रबन्ध गायन के उत्तम गायक थे। उनके संगीत की प्रसिद्धि आम जनता में बहुत प्रचलित थी। अलाउद्दीन

खिलजी चाहते थे कि विद्वान अमीर खुसरो उनसे अधिक प्रसिद्धि हासिल करें। अलाउद्दीन खिलजी ने अमीर खुसरो और गोपाल नायक का एक संगीत मुकाबला करवाया। मुकाबले की शर्त यह थी कि दोनों एक–दूसरे का गायन नहीं सुनेंगे। मुकाबले का आरम्भ गोपाल नायक के गायन से किया गया। गोपाल नायक ने गायन के अन्त में गीतम् गाया जो उनकी अपनी आविष्कार की हुई रचना थी। अमीर खुसरो ने यह सारा गायन सुना और गीतम के आधार पर नक्ष, कौल, किलवाना आदि रचनाएं बनाकर लोगों को सुनवाई और इस तरह अमीर खुसरो को उत्तम गायक की पदवी दी गई।

- **खिलजी काल में सांगीतिक ग्रन्थ** – अलाउद्दीन खिलजी के समय में पं. शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर, जयदेव ने गीत गोविन्द नामक ग्रन्थ की रचना की।

संगीत रत्नाकर : पं. शारंगदेव का समय 1210 ई. से लेकर 1247 ई. के मध्य में माना जाता है। यह देवगिरि(दौलतबाद) यादव वंशी राजा के दरबारी संगीतकार थे। इन्होंने संगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसको केवल उत्तरी भारतीय संगीत में ही नहीं बल्कि दक्षिणी संगीत में भी बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ मुख्य रूप से सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

1. स्वराध्याय
2. तालाध्याय
3. वाद्याध्याय
4. नृत्याध्याय
5. रागाध्याय
6. प्रबन्धाध्याय
7. प्रकीर्णकाध्याय

इस ग्रन्थ में तीनों कलाओं गायन, वादन व नृत्य का पूर्ण विवरण मिलता है। यह शुद्ध और विकृत स्वरों की संख्या 12 मानते हैं। इन्होंने भरत की तरह 18 जातियां मानी परन्तु जातियों के लक्षण बताते समय तीन और लक्षण जोड़ दिए, जिससे इन जातियों के कुल 13 लक्षण बताए गए। इन्होंने कुल 22 श्रुतियां मानी और उन पर स्वरों की स्थापना 4–3–2–4–4–3–2 के अनुसार करते हुए षड्ज को चौथी श्रुति पर कायम किया। उन्होंने दसविधि राग वर्गीकरण के अन्तर्गत ग्राम, राग, उपराग, राग भाषा, विभाषा, अन्तर भाषा, रागांग, क्रियांग, भाषांग, उपांग आदि का वर्णन किया है। वाद्य अध्याय में इन्होंने चारों प्रकार के वाद्यों के बारे में वर्णन किया है। जबकि राग अध्याय में 200 से ऊपर रागों का वर्णन किया है।

गीत गोविन्द : गीत गोविन्द की रचना 12वीं शताब्दी में जयदेव ने की। आप उच्चकोटि के कवि होने के साथ–साथ उत्तम संगीतकार भी थे, इसलिए इनको वाग्गेयकार भी कहा जा सकता है। गीत गोविन्द जयदेव की अमर कलाकृति है। यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है। इसका अनुवाद दूसरी भाषाओं में भी हो चुका है। इस ग्रन्थ में राधा–कृष्ण की प्रेम–लीलाओं का भी वर्णन किया गया है। यह संगीतमयी ग्रन्थ माना जाता है क्योंकि इसके पदों के ऊपर राग और तालों के नाम अंकित किए गए हैं। इस ग्रन्थ का स्थाई भाव प्रेम है परन्तु यह प्रेम दुनियावी न होकर आत्मा–परमात्मा के मिलन का प्रेम है। यह ग्रन्थ संगीत के क्षेत्र में विशेष स्थान रखता है।

- **बाबर काल में संगीत** – मुगलों के सबसे पहले बादशाह बाबर थे। बाबर खुद एक अच्छा संगीतकार था। इस काल में कालीनाथ ने "संगीत रत्नाकर" की टीका लिखी। इस काल में भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा। भारतीय, विदेशियों के हमले से पीड़ित होकर परमात्मा की भक्ति में लीन हो गए। भक्ति–आन्दोलन के प्रचारक कबीर, रामानन्द, चैतन्य, नामदेव और वैष्णव मत के अनुयायी आदि ने

परमात्मा के गुणों का गायन संगीत के माध्यम से किया। क्योंकि भक्ति–आन्दोलन के प्रचारकों ने संगीत की अपार शक्ति का अनुभव कर लिया था। बाबर युग में धर्म और संगीत का सुमेल हुआ।

- **हुमायूँ काल में संगीत** – बाबर के बाद उसका पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा। हुमायूँ के समय में सूफी मत का अधिक प्रचार हुआ था। सूफी कवियों ने भी अपनी रचनाओं का संगीत के माध्यम से प्रचार किया। इसके शासन काल में कर्नाटक के प्रसिद्ध ग्रन्थकार रामामात्य जी ने "स्वरमेल कलानिधि" की रचना की।

- **सुल्तान हुसैन शर्की काल में संगीत** – जौनपुर के राजा हुसैन शर्की का समय भी लोधी काल के साथ ही था। कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने "ख्याल शैली" का आविष्कार किया। परन्तु इसके बारे में भी मतभेद हैं। इसके आविष्कार के बारे में चाहे मतभेद हैं परन्तु यह जरूर कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने "ख्याल शैली" के प्रचार और प्रसार के लिए विशेष योगदान दिया। इन्होंने कई नए रागों की रचना की। जैसे जौनपुरी तोड़ी, रसूली तोड़ी, सिन्धी भैरवी, श्याम के विभिन्न प्रकार जैसे मल्हार श्याम, बसन्त श्याम आदि।

- **मानसिंह तोमर काल में संगीत** – राजा मानसिंह तोमर ग्वालियर के साथ सम्बन्धित थे। आप बहुत बड़े संगीत–प्रेमी ही नहीं बल्कि संगीत के सैद्धान्तिक और क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित सम्मेलनों का आयोजन भी किया करते थे। स्वयं राजा मानसिंह तोमर भी इस वाद–विवाद में हिस्सा लेते थे।

- **अकबर काल में संगीत** – अकबर का जन्म 1542 ई. में हुआ था। इनका शासन काल 1556 से आरम्भ होता है। 1556 ई. में जब इनके पिता हुमायूँ की मृत्यु हुई तब अकबर की तख्तपोशी की रसम कलानोर में की गई। उस समय अकबर की आयु केवल 14 साल की थी। अकबर एक अच्छा शासक होने के साथ–साथ संगीत प्रेमी भी था। "He is rightly said to be the most enthusiastic lover of music who rendered all possible help to the musicians in the cultivation and preservation of Indian music."

संगीत का प्रेमी होने के कारण उसने नकाड़ा नामक वाद्य को बजाना सीखा और इसमें निपुणता हासिल की। अकबर के काल में संगीत का प्रचार घर–घर में हुआ। इस काल में संगीत सम्बन्धी विभिन्न पक्षों को मुख्य रूप से चार भागों में बांटा गया :–

1. संगीतकार
2. भक्ति–आन्दोलन के प्रचारक संगीतकार
3. संगीत–सम्मेलन
4. संगीत–ग्रन्थ

संगीतकार : अकबर ने अपने दरबार में गायकों तथा वादकों को विशेष रूप से श्रेय दिया। अकबर संगीतकारों का बहुत आदर करता था और समय–समय पर वह उन्हें इनाम देकर प्रोत्साहित भी करता रहता था। इनके दरबार में दूसरी रियासतों के कालाकार भी अपनी कला–प्रदर्शन के लिए आते थे। इनके दरबार में 36 संगीतकार थे। इनमें से प्रमुख संगीतकारों जैसे – बैजू, तानरंग खां, गोपाल खां, तानसेन, बाबा रामदास, सूरदास, बहादुर, स्वामी हरिदास आदि के बारे में विस्तार सहित वर्णन किया जा रहा है।

तानसेन : भारतीय संगीत के क्षेत्र में तानसेन को संगीत सम्राट कहा जाता है। तानसेन द्वारा संगीत के क्षेत्र में दिया गया योगदान बेमिसाल है। तानसेन बचपन से ही बहुत नटखट था। पढ़ाई की जगह प्राकृतिक वातावरण में बहुत मन लगाता था और जानवरों की आवाज की नकल करने में निपुण था। एक बार स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य–मण्डली के साथ जंगल से जा रहे थे, तो तानसेन ने उनको शेर की आवाज़ निकालकर डराया। जब स्वामी जी को यह पता चला कि यह आवाज किसी शेर की नहीं किसी बच्चे की है, तो वह उसकी योग्यता से बहुत प्रभावित हुए और उसको अपना शिष्य बनाने का निर्णय किया। तानसेन ने स्वामी जी से संगीत की शिक्षा हासिल करने के बाद संगीत के क्षेत्र में

बहुत निपुणता प्राप्त की। उनकी प्रसिद्धि को सुनकर राजा राम चन्द्र ने आपको दरबारी गायक के तौर पर अपने दरबार में रख लिया। तानसेन के समय में प्रमुख गायन शैली ध्रुपद थी। तानसेन ने अनेक ध्रुपदों की रचना की और उनका गायन किया। इनकी चर्चा अकबर तक भी पहुंची। 1526 ई. में अकबर ने तानसेन को दिल्ली बुलाया। उनका गायन सुनकर अकबर बहुत प्रभावित हुए और तानसेन को रत्न की उपाधि देकर दरबार में रख लिया।

राग : तानसेन ने दरबारी कान्हड़ा, मीयां की तोड़ी, मियां की सारंग, मियां की मल्हार आदि रागों की रचना की। तानसेन के जीवन के साथ जुड़ी हुई एक प्रसिद्ध घटना है। अकबर के दरबार में प्रसिद्ध कलाकार तानसेन से दूसरे संगीत कलाकार ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने अकबर बादशाह को तानसेन से दीपक राग सुनने के लिए कहा क्योंकि वह जानते थे कि जब तानसेन यह राग गाते थे तो तपिश पैदा हो जाती थी। इस राग को गाने के बाद तानसेन की हालत बहुत खराब हो गई और इस गर्मी को कम करने के लिए तानसेन की पुत्री ने मल्हार राग गया। इस तरह के और भी उदाहरण मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि तानसेन संगीत के उच्चकोटी के साधक थे।

शैली : तानसेन ने ध्रुपद गायन शैली को उच्चकोटि तक पहुंचाया।

वंश–परम्परा : तानसेन की गायन की विभिन्न शैलियां घरानों के साथ जानी जाती हैं। उनके पुत्र सूरत सेन और विलास खां ने उनकी संगीत–परम्परा को आगे बढ़ाया। इनका घराना रबाबियों का घराना कहलाया। इनकी लड़की–दामाद, जो वीणा बजाने में निपुण थे, बीनकार कहलाए।

बैजु : बैजु भी अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गायक थे। वह भी स्वामी हरिदास के शिष्य थे। तानसेन और बैजु की संगीत–प्रतियोगिता भी अक्सर हुआ करती थी। जिसके बारे में कुछ विद्वानों का मत है कि अकबर ने बैजु का गायन अधिक पसन्द किया था, जबकि अन्य विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं।

रामदास : रामदास भी अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गायक थे। इन्होंने रामदासी मल्हार की रचना की।

भक्ति आन्दोलन के प्रचारक : भारत में भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है। भक्ति मनुष्य को दुःख, सुख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि की भावनाओं से मुक्त करती है। भक्ति का प्राचीन स्वरूप वेदों के द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की लहर चली जिसको भक्ति आन्दोलन का नाम दिया गया। भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने आम जनता को भक्ति के बुनियादी तत्वों का ज्ञान संगीत के माध्यम से दिया। क्योंकि इन पीरों–फकीरों और संतों ने संगीत को ही अपना प्रमुख साधन माना। मध्यकाल में हमारे भक्ति संगीत की प्रमुख विभूतियां मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि हैं।

स्वामी हरिदास : स्वामी हरिदास जी तानसेन के गुरू थे तथा आध्यात्मिक संगीत के महान संगीतज्ञ थे। स्वामी हरिदास जी ने ब्रज भाषा में अनेक ध्रुपदों की रचना की और उन्हें गेय रूप दिया। यह कहा जाए कि स्वामी हरिदास उत्तर भारत के महान वाग्गेयकार थे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वामी जी गायन तथा वादन दोनों कलाओं में प्रवीण थे। इन्होंने अनेक शिष्य तैयार किए जिनमें से तानसेन, बैजु बावरा, गोपाल नायक, मदनलाल, रामदास, पं. सोमनाथ आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

मीराबाई : मीराबाई श्री कृष्ण की सच्ची उपासिका थी। मीरा ने आध्यात्मिक पदों और गीतों को संगीत के रूप में ढाला। इन्होंने संगीत की स्वर–लहरियों का गायन करते समय करताल, झांझ, मंजीरा, एकतारा आदि वाद्यों का प्रयोग भी किया और नृत्य के द्वारा अपने मन के भावों को प्रकट किया। इन्होंने गायन, वादन, नृत्य तीनों कलाओं का सम्मिलित रूप जनता के सामने प्रस्तुत किया। मीराबाई एक श्रेष्ठ कृष्ण भक्त थी। उनकी भक्ति का माध्यम संकीर्तन था। उनके द्वारा की गई भजन–रचनाएं आज भी आम जनता में प्रचलित हैं। उनके द्वारा रचित राग "मीराबाई की मल्हार" आज भी आम जनता में प्रचलित है।

तुलसीदास : तुलसीदास जितने बड़े कवि एवं भक्त थे, उतने ही बड़े संगीतज्ञ भी थे। अकबर के काल में तुलसीदास जी ने संगीत को एक नया रूप दिया, जिसमें नए भाव, नई कल्पनाएं मुख्य रूप से थी। उनके द्वारा रचित रामचरित मानस सम्पूर्ण रूप से संगीत पर आधारित है, जिसमें विभिन्न चौपाइयों को विभिन्न रागों की स्वर–लहरियों द्वारा सजाकर प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने काव्यों में रागों का पूर्ण रूप से प्रयोग किया है जैसे कृष्णगीतावली में 10 रागों और गीतावली में 21 रागों का प्रयोग किया गया है। उन्होंने भक्ति रस को विशेष महत्व दिया। तुलसीदास जी द्वारा रचित रामायण अनेक भाषाओं में अनुवादित हो चुका है।

सूरदास : बाबा रामदास के पुत्र सूरदास जी को उच्च कोटि के आध्यात्मिक संगीतकारों की श्रेणी में रखा जा सकता है। सूरदास जी एक उच्च कोटि के भक्त कवि और गायक थे। इनको भी आध्यात्मिक श्रेणी के उत्तम वाग्गेयकार कहा जा सकता है। इन्होंने सूरमल्हार राग की रचना की और तीन ग्रन्थ रचे। जिन ग्रन्थों में साहित्य और संगीत का जो वर्णन मिलता है, वह हैं सूरसागर, सूरसूरावली, साहित्यलहरी। सूरसागर में तो संगीत का भरपूर खज़ाना है। इसमें संगीत के परिभाषिक तत्व, विभिन्न शैलियों, रागों आदि का वर्णन मिलता है।

1.3.2 संगीत ग्रन्थ – अकबर के समय में पुण्डरीक विट्ठल ने सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, रामामात्य ने स्वरमेल कलानिधि, सूरदास ने सूरसागर, सूररचनावली आदि प्रमुख ग्रन्थों की रचना की। इस काल में गुरू अर्जुन देव जी ने आदि ग्रन्थ गुरू ग्रन्थ का भी संकलन किया। गुरू अर्जुन देव जी ने अपनी और पांच गुरूओं की वाणी के अतिरिक्त दूसरे भक्तों पीर, फकीरों की वाणियों को इकट्ठा करके आदि गुरू ग्रन्थ साहिब की रचना की। इसके बारे में जी.एस. छाबड़ा लिखते हैं – "The hymns of several other bhaktas were also available. The Guru decided to bring all of them together in the shape of Granth."

गुरू ग्रन्थ साहिब में गुरूओं की वाणी के अतिरिक्त दूसरे संतों, पीरों, फकीरों की वाणी इस बात का प्रमाण देती है कि गुरू ग्रन्थ साहिब धर्म–निरपेक्ष ग्रन्थ है। प्यारा सिंह पदम अपनी पुस्तक ग्रन्थ दर्शन में लिखते हैं कि आदि ग्रन्थ में सम्प्रदाय तालीम के लिए कोई स्थान नहीं है। यहां तो अल्लाह, राम, रहीम, वेद, पुराण का मिलाजुला समास मिलता है। इसका महत्व इसलिए नहीं है कि यह सिखों का धर्म ग्रन्थ है बल्कि इसलिए है कि यह सबके भले का पैगाम है।

इसमें एक विशेष सम्पादकीय ढंग मौजूद है। डॉ. तारण सिंह लिखते हैं कि गुरू ग्रन्थ साहिब में जो सम्पादकीय ढंग या प्रबन्ध मौजूद है, यह विशेष रूप से गुरू अर्जुन देव साहिब की देन है। ग्रन्थ में सम्मिलित वाणी को कीर्तन द्वारा गायन की परम्परा गुरू नानक देव जी ने चलाई। इसका अनुकरण बाकी गुरूओं ने भी किया। कीर्तन का शब्दकोषीय अर्थ है "भजन–परमेश्वर के गुण गान", राग सहित करतार के गुण गाना। सम्पूर्ण वाणी को रागों के अन्तर्गत बांटा गया। संगीत का सहारा लेकर गुरू वाणी के रचनाकारों ने सम्पूर्ण मनुष्यता को भाईचारा, धर्म–निरपेक्षता और मानसिक शान्ति का सन्देश दिया।

गुरूओं ने धर्म और संगीत का मेल किया। इसके बारे में सुरजीत सिंह गांधी अपनी पुस्तक "हिस्टरी ऑफ सिख गुरू ग्रन्थ" में लिखते हैं कि – "The gurus considered devine worship through music." उनका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक पक्ष को उभारना था न कि सांगीतिक पक्ष को। संगीत का तो उन्होंने मात्र सहारा ही लिया।

स्वरमेल कलानिधि : दक्षिणी संगीत विद्वान् रामामात्य ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें पांच प्रकरण हैं। जैसे स्वर प्रकरण, उपोद्धात प्रकरण, वीणा प्रकरण, मेल प्रकरण और राग प्रकरण। स्वर प्रकरण में सात शुद्ध और सात विकृत स्वर माने गए हैं। वीणा प्रकरण में वीणा की डांड पर आपने 14 स्वर स्थापित

किए हैं। मेल प्रकरण में 20 थाट का वर्णन है। राग प्रकरण में 20 थाट के अन्तर्गत 63 अन्य रागों का वर्णन मिलता है।

सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, रागनिर्णय : बादशाह अकबर के समय में भारतीय संगीत उन्नति के उच्च शिखर तक पहुंच चुका था। पुण्डरीक विट्ठल के द्वारा लिखित चार ग्रन्थ मिलते हैं– 1. सद्रागचन्द्रोदय, 2. राग माला, 3. रागमंजरी 4. राग निर्णय। इस ग्रन्थ में वर्णित कवि के रागों का अवलोकन करें तो पता चलता है कि उसमें कई राग दक्षिणी पद्धति के रागों से मिलते हैं। पुण्डरीक विट्ठल को उत्तर भारतीय संगीत पर पूर्ण अधिकार था। आपने भारतीय संगीत में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संगीत दर्पण : जहांगीर काल में संगीत का स्तर बहुत ऊंचा था। इनके शासनकाल में विलास खां, परवेज खां, छतर खां आदि प्रसिद्ध संगीतकार थे। इनके काल में पंडित दामोदर ने "संगीत दर्पण" ग्रन्थों की रचना की। 1625 ई. में पंडित दामोदर द्वारा संगीत दर्पण की रचना हुई। इस ग्रन्थ के दो अध्याय हैं, पहला स्वर अध्याय और दूसरा राग अध्याय। यह ग्रन्थ हिन्दी, फारसी, गुजराती आदि भाषाओं में लिखा गया है। इस ग्रन्थ में रागों का विशेष वर्णन किया गया है।

राग तत्व विबोध : सोमनाथ के द्वारा लिखित राग तत्व विबोध भी इसी काल की रचना है। इन्होंने कुल 22 श्रुतियां मानी। इन्होंने सात शुद्ध और 15 अशुद्ध स्वरों का वर्णन 23 मेलों के अन्तर्गत किया।

संगीत पारिजात : औरंगजेब के काल में संगीत को इतना प्रोत्साहन नहीं मिला क्योंकि वह संगीत का प्रेमी नहीं था परन्तु फिर भी संगीत के साधक एकान्त में बैठकर संगीत की साधना करते रहे। इनके शासनकाल में हृदयनारायण ने हृदयकौतुक, हृदय प्रकाश, भावभट्ट ने अनूप संगीत विलास, अहोबल ने संगीत पारिजात, व्यंकटमुखी ने चतुर्दण्डि प्रकाशिका आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की।

संगीत पारिजात ग्रन्थ का समय 17वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। उन्होंने इस ग्रन्थ को सात अध्यायों में बांटा, जो इस प्रकार हैं–1. मंगलाचरण, 2. स्वर प्रकरण 3. राग प्रकरण 4. मूर्च्छना प्रकरण, 5. वर्ण, अलंकार प्रकरण 6. जाति प्रकरण 7. राग प्रकरण। यह ग्रन्थ दोनों पद्धतियों में विशेष स्थान रखता है।

अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप विलास, अनूप प्रकाश : भावभट्ट ने अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप विलास, अनूप प्रकाश आदि तीन ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों में संगीत के पारिभाषिक तत्व जैसे स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, अलंकार आदि का वर्णन किया। इसके अतिरिक्त ध्रुपद गायन शैली और रागों के भेदों के बारे में बताया।

हृदय कौतुक और हृदय प्रकाश : हृदय नारायण के हृदय कौतुक और हृदय प्रकाश नामक ग्रन्थों की रचना औरंगजेब के समय में ही मानी जाती है। इसमें उन्होंने वीणा की तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना की। इसमें संगीत के पारिभाषिक तत्वों जैसे वादी, संवादी, विवादी, तान आदि का वर्णन किया है। इन्होंने एक राग, जिसका नाम हृदय राग रखा, की रचना भी की।

1.4 आधुनिक काल

सन् 1800 ई. से लेकर अब तक का समय आधुनिक काल में आता है। लगभग 1750 ई. में अंग्रेज भारत में आए। यह समय भारतीयों के लिए अच्छा सिद्ध नहीं हुआ। भारतीय भाषाओं तथा कलाओं के साथ अंग्रेजों को कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने असभ्यता की ही संस्कृति समझी। भारतीय संगीत को उन्होंने शोरगुल से ज्यादा कुछ नहीं समझा। इसी कारण संगीत पतन की ओर जाने लगा। अंग्रेजों ने इसको कोई प्रोत्साहन नहीं दिया क्योंकि वह देश में राज्य करना चाहते थे। इससे

पहले संगीत को राजाओं का श्रेय मिलता था परन्तु अंग्रेजों के समय सारे महाराजाओं को अपने आप को बचाने की चिंता थी। संगीत विलासिता का साधन बनकर रह गया। समझदार व्यक्ति इनको घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए सन् 1900 से पहले की दशा बहुत असन्तोषजनक थी। इस अवस्था में संगीत कुछ देशी रियासतों में दीपक की लौ की भांति जलता रहा और यह शिक्षा कुछ घरानों तक सीमित रह गई। इस समय पवित्र कला संगीत एक अपवित्र वातावरण में फंस गई। संगीत जो किसी समय समाज का आभूषण था, उसको दुश्मन माना जाने लगा।

1.4.1 संगीत विकास के कार्य – जयपुर नरेश महाराजा प्रताप सिंह(1779 ई. से 1804 ई.) की प्रेरणा के साथ संगीत विद्वानों का एक सम्मेलन हुआ। इसके फलस्वरूप संगीत सार ग्रंथ का निर्माण हुआ। इसमें बिलावल थाट के स्वरों को शुद्ध माना गया। 19वीं शताब्दी में भारतीय संगीत के विकास के लिए काम हुए। उस्तादी गायकी की स्वरलिपि तैयार की गई। अश्लील गीतों के स्थान पर भक्ति भाव के पदों को स्थापित किया गया। संगीत शास्त्र की विस्तार से चर्चा हुई। बाकी विषयों की तरह संगीत को स्थान मिला। शास्त्रीय संगीत के प्रति जन–साधारण की रूचि पैदा हुई।

नगमाते आसफी : सन् 1813 में पटना के मोहम्मद रजा ने "नगमाते आसफी" को लिखा। इन्होंने पुरानी राग–रागिनी पद्धति को गलत बताया और अपनी एक नवीन पद्धति 6 रागों और 36 रागिनियों वाली चलाई। कई विद्वानों का विचार है कि इस ग्रंथ में ही सबसे पहले बिलावल को शुद्ध थाट माना गया।

संगीत कल्पद्रुम : सन् 1842 में कृष्णानन्द व्यास ने यह पुस्तक लिखी। यह कलकत्ता से प्रकाशित हुई। इसमें उस समय तक प्रचलित ध्रुपद, धमार, ख्याल की शब्दावली दी गई है।
कैपटन विलरड : 1834 में इन्होंने एक पुस्तक A treatise on the music of Hindustan लिखी और प्रकाशित की।

एम.एस.टैगोर : बंगाल के प्रसिद्ध राजा एम.एस. टैगोर ने राग–रागिनी पद्धति को स्वीकार करके (1867–96) के समय में कई पुस्तकें लिखीं।

1- English Verses to Hindu Music
2- Six Raags and Thirty Six Raginis
3- Kantha Kaumudi
4- Sangeet Sar
5- The Universal History of music

यह पुस्तकें बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई।

कृष्णा धन बैनर्जी : इनकी पुस्तक "गीत सूत्रधार" में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति से सम्बन्धित अनेक ध्रुपदों का संकलन है। इनमें ध्रुपदों की रचनाओं की स्वरलिपि स्टाफ नोटेशन में की गई है। दक्षिण के संगीत विद्वान आपकी संगीत–रचनाओं को बहुत आदर और श्रद्धा के साथ गाते हैं।

पन्नालाल गोस्वामी : इनका संगीत ग्रंथ "नाद विनोद" 1896 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें रागों के प्राचीन स्वरूप, 6 राग 36 रागिनियों के गायन के विभिन्न पक्षों और सितार के पदों के बारे में विशेष जानकारी मिलती है।

संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शनी : कर्नाटक संगीत की यह पुस्तक सुभाराव द्वारा प्रकाशित हुई। इसमें शास्त्रीय रचनाओं के अलावा व्यंकटमुखी, श्याम शास्त्री, रामास्वामी आदि कर्नाटक के अनेक प्रसिद्ध रचनाकारों की रचनाएं शामिल हैं।

मोहम्मद करम इमाम : इनकी उर्दू की रचना मुआदनुल मौसिकी 19वीं शताब्दी में प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने कहा कि ऋषभ ही क्यों उतरता है, स और प स्वर क्यों नहीं। इसके अलावा 12 स्वरों के अलग–अलग नाम हैं।

राजा नवाब अली : राजा नवाब अली, जो कि लाहौर के रहने वाले थे, उन्होंने सन् 1911 ई. में मारिफुन्नगमात की रचना की। यह भातखण्डे जी से प्रभावित हुए और उनके सम्पर्क में आए। इसका हिन्दी में भी अनुवाद हो चुका है।

1.4.2 वर्तमान शिक्षा का स्वरूप – आधुनिक संगीत में विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने का श्रेय पंडित भातखंडे जी और पुलस्कर जी को जाता है।

- **पंडित विष्णु नारायण भातखंडे** : 10 अगस्त 1860 को महाराष्ट्र में भातखंडे जी का जन्म हुआ। उन्होंने बी.ए., एल.एल.बी. तक की शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने भारतीय संगीत को ऊंचा स्थान दिलाने के लिए अपने प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों का अध्ययन किया। सारे भारत की यात्रा करने के बाद जो सामग्री जहां मिली, उसको प्राप्त किया। प्राचीन एवं नवीन विचारों को इकट्ठा करके उस पर शास्त्रों की सहमति के साथ अपना दृष्टिकोण निर्धारित किया।

संगीत के क्षेत्र में विशेष कार्य : उन दिनों में राग–रागिनी की प्रथा प्रचलित थी। संगीतकार ज्यादा शिक्षित न होने के कारण राग के नियमों की ओर ध्यान न देते हुए जिस प्रकार भी उनको सिखलाया जाता था, ग्रहण कर लेते थे। भातखंडे जी ने कई स्थानों पर अपने ग्रंथों में इस प्रकार का वर्णन किया है। बहुत बड़े–बड़े गायक गायन तो बहुत अच्छा करते थे परन्तु उनको न तो राग का ज्ञान था और न ही थाट का ज्ञान था। वे यह भी नहीं बता सकते थे कि व कौन से स्वर लगा रहे हैं। यह देखकर भातखंडे जी ने दक्षिण मेल पद्धति से प्रभावित होकर "जनक थाट पद्धति" का प्रचार किया, जिसको लोगों ने समझा, उपयोगिता का ध्यान रखा और अपना लिया। इनमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पढ़े–लिखे थे। इसी कारण वे उच्च कोटि तथा निम्न कोटि के संगीतकारों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सके।

ग्रंथ–लेखन : भातखंडे जी ने अभिनव राग मंजरी संस्कृत में और हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका–6 भागों में और मराठी भाषा में भी ग्रंथ लिखे। इसके अलावा अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में भी पुस्तकें लिखी।

इन्होंने प्राचीन उस्तादी बंदिशों को उसी रूप में कायम रखने के लिए अपनी स्वरलिपि का निर्माण करके उसमें बंदिशें लिखी। आने वाले विद्यार्थी वर्ग के लिए लक्षण गीतों का प्रचार किया। चतुर, चतर आदि उपनाम इनकी रचनाओं में मिलते हैं। हररंग के उपनाम तथा गीत उन्होंने अपने उस्ताद मोहम्मद अली खां साहब की स्मृति में लिखे।

संगीत सम्मेलन तथा संगीत शिक्षा संस्थाएं : भातखंडे जी ने भारत के विभिन्न स्थानों बड़ौदा, दिल्ली, बनारस, लखनऊ आदि में संगीत सम्मेलन किए। इसमें संगीत सम्बन्धी शास्त्र–चर्चा और प्रसिद्ध कलाकारों को इकट्ठा करके साधारण जनता को संगीत कला का परिचय करवाया। ग्वालियर, बड़ौदा, लखनऊ आदि स्थानों पर संगीत शिक्षा का प्रचार करने के लिए संगीत के विद्यालयों की स्थापना की गई, जो आज भी सफलतापूर्वक चल रहे हैं।

- **पंडित विष्णु दिगम्बर पुलस्कर** : 1872 में महाराष्ट्र में पुलस्कर जी का जन्म हुआ। संगीत के संस्कार इनके अंदर थे। बाल्यावस्था में ही आतिशबाजी के साथ नेत्र चले जाने के कारण यह पढ़ाई नहीं कर सके तथा संगीत की ओर पूरा ध्यान देने लगे।

संगीत क्षेत्र में महान कार्य : पंडित जी ने संगीत के उद्धार का महान् कार्य किया। उनके समय में भारतीय संगीत अनुशीलन के अन्धकार में पड़ा था। उसकी अपनी पवित्रता समाप्त हो गई थी। ब्रिटिश काल में भारतीय संगीत से घृणा की जाती थी यह देखकर इस महान् आत्मा का दिल कांप उठा।

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने गीतों में से अश्लील तथा श्रृंगार रस के शब्द निकालकर भक्ति रस के शब्दों का समावेश किया। फलस्वरूप इनकी वाणी का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लोगों ने इनके संगीत को अपनाया।

संगीत प्रचार के लिए इन्होंने संगीत विद्यालय खोले तथा अनेक योग्य शिष्य तैयार किए। सबसे पहले 1907 में "लाहौर गन्धर्व" महाविद्यालय की स्थापना की। इसके बाद दिल्ली, बम्बई तथा पूना में संगीत संस्थाओं की स्थापना भी की। उनके कुछ गन्धर्व रत्नों के नाम इस प्रकार हैं–पंडित विनायक राव पटवर्धन, ओंकार नाथ ठाकुर, पंडित नारायण राव व्यास, श्री शंकर राव व्यास, नारायण राव, सोरेश्वर खरे आदि।

ग्रंथ लेखन : आप ने बहुत सारे ग्रंथों की भी रचना की। संगीत बाल बोध, संगीत बाल प्रकाश, राग प्रवेश आदि पंडित जी की महान कृतियां हैं। इन्होंने एक मासिक पत्रिका भी चलाई जो कि संस्था में ही प्रकाशित होती थी। कुछ समय बाद वह बंद हो गई।

भक्ति भावना तथा अंतिम जीवन : पंडित जी को समाज में बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ। अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने संसार से वैराग्य ले लिया और सब कुछ छोड़कर अपने द्वारा बनाए "राम नाम आधार" आश्रम में रहने लगे। आप रामायण और "रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम" पंक्तियों का गायन करने लगे। जैजैवंती राग के स्वरों में गाई हुई उनकी यह धुन भारतीयों के कानों में आज भी गूंजती है।

इस प्रकार इन दोनों महान् संगीतकारों(पं. भातखंडे और पं. पुलस्कर) के महान प्रयत्नों तथा मेहनत के कारण भारतीय संगीत अपना स्थान प्राप्त कर सका और उन्नति की ओर चल पड़ा। आज संगीत के क्रियात्मक तथा शास्त्रीय दोनों पक्षों का समुचित विकास हो रहा है। आज यहां बड़े–बड़े संगीतकार अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। वहां दूसरी ओर संगीत शास्त्र में नए अनुसंधानों द्वारा संगीत का विस्तार बहुत तीव्र गति से हो रहा है। आज भारतीय संगीत दिन–प्रतिदिन बहुत उन्नति कर रहा है तथा दूसरे विषयों की भांति उचित स्थान प्राप्त कर रहा है।

- **ओंकारनाथ ठाकुर** : पंडित ओंकर नाथ ठाकुर का संगीत–जगत् को दिया गया योगदान हमेशा अमर रहेगा। आप एक उच्चकोटि के संगीतकार थे। आपने संगीतांजली, प्रणव भारती नामक पुस्तकें लिखी। 1955 में आप को भारत सरकार की ओर से पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया। आप ग्वालियर घराने से सम्बन्ध रखते थे। आप ख्याल गायन में बहुत माहिर थे परन्तु ध्रुपद, ठुमरी, भजन भी गाते थे।

- **उस्ताद अलाउद्दीन खां** : उस्ताद अलाउद्दीन खां का संगीत क्षेत्र में विशेष योगदान है। आप को संगीत के लिए कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा परन्तु इससे आपकी जिज्ञासा कम नहीं हुई। आपने गायन और वादन दोनों में ही कुशलता प्राप्त की। आपको राष्ट्रपति की ओर से पद्म भूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया। आपने संगीत के क्षेत्र में उच्च कोटि के शिष्य तैयार किए जिनमें से पं. रवि शंकर, उ0 अली अकबर खां जी का नाम उल्लेखनीय है।

आधुनिक युग के उभरते कलाकार – 20वीं शताब्दी में बहुत सारे उभरते कलाकार संगीत के स्तर को ऊंचा करने की कोशिश कर रहे हैं, उनमें पंडित विलायत खां, पंडित रवि शंकर, अली अकबर खां, सुजात खां, अल्ला रक्खा खां, जाकिर हुसैन, हरि प्रसाद चौरसिया, बिसमिल्ला खां आदि का नाम उल्लेखनीय है। यह संगीतकार अपने–अपने क्षेत्र में संगीत का प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं।

आधुनिक युग में संगीत विकास के अन्य साधन – आधुनिक युग रेडियो तथा टी.वी. का युग है। रेडियो तथा टी.वी. द्वारा उच्च कोटि के संगीतकारों के विचार तथा उनकी कला पेश की जाती है, जिससे संगीत का काफी प्रचार हुआ है।

संगीत शिक्षा संस्थाएं – आधुनिक युग में बहुत सारी संगीत संस्थाएं संगीत की शिक्षा दे रही हैं। जैसे प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद, भातखण्डे कॉलेज लखनऊ(मैरिस म्यूज़िक कॉलेज), गन्धर्व महाविद्याालय पूना आदि का नाम उल्लेखनीय है। इसके अलावा संगीत स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में विषय के रूप में भी सिखाया जाता है।

संगीत पुस्तकें : संगीत के विभिन्न पक्षों पर(क्रियात्मक एवं सैद्धान्तिक) पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। संगीत, संगीत कला विहार, इंडियन म्यूजिक जनरल, मासिक पत्रिकाएं संगीत के प्रत्येक विषय पर रोशनी डाल रही हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. गीत गोविन्द पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. मानसिंह तोमर काल में संगीत की स्थिति को संक्षेप में समझाइए।
3. आधुनिक कालीन प्रसिद्ध संगीत ग्रंथों के नाम बताइए।
4. उस्ताद अलाउद्दीन खां के सांगीतिक योगदान को बताइए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. मैरिस म्यूजिक कॉलेज इलाहाबाद में स्थित है।
2. अभिनव राग मंजरी के रचयिता पं.वि.दिगम्बर पुलस्कर हैं।
3. भक्ति आंदोलन के प्रचारकों में सूरदास प्रमुख थे।
4. तानसेन द्वारा राग मियां की सारंग की रचना हुई।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. संगीत दर्पण ग्रंथ के लेखक _____ हैं।
2. गीत गोविन्द की रचना _____शताब्दी में हुई।
3. सर्वप्रथम सन् _____ में लाहौर गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना हुई।
4. पं.ओमकार नाथ ठाकुर को सन् _____में पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप मध्यकाल के उपरान्त से आधुनिक काल तक के भारतीय संगीत के इतिहास के विषय में जान चुके होंगे। मध्यकाल में मुख्य रूप से विदेशी आक्रमणों से भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था पर विशेष प्रभाव पड़ा। विशेष रूप से उत्तर भारतीय संगीत पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। मध्यकाल में खिलजी, तुगलक, लोधी एवं मुगल शासकों का तथा आधुनिक काल में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव रहा, जिसका प्रभाव संगीत की विभिन्न विधाओं एवं संगीतज्ञों पर पड़ा। इन कालों में ख्याल, तराना, गज़ल, कव्वाली आदि अनेक नवीन विधाओं का मूल्यांकन हुआ तथा अनेक रागों एवं तालों का आविष्कार भी हुआ। मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की लहर चली। भक्ति के मार्ग को जन–जन तक पहुंचाने हेतु संगीत का माध्यम ही विशेष रूप से रहा। भक्ति संगीत में प्रमुख रूप से मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि विभूतियां रहीं। मध्यकाल में प्रमुख ग्रन्थों में स्वरमेल कलानिधी, संगीत दर्पण, राग तत्व विबोध, संगीत पारिजात, अनूप संगीत रत्नाकर, हृदय कौतुक आदि की रचना हुई। आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन से भारतीय संगीत का पतन होने लगा। 19वीं शताब्दी से भारतीय संगीत के विकास के लिए कार्य शुरू हुए। अनेक ग्रन्थ नगमाते आसफी, संगीत कल्पद्रुम, क्रमिक पुस्तक मालिका, संगीतांजलि आदि ग्रन्थों की रचना हुई। पं.

वि. नारायण भातखंडे एवं पं. वि. दिगम्बर पुलस्कर ने विशेष रूप से संगीत की दशा एवं शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने के सफल प्रयास किए।

1.6 शब्दावली

1. **द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक –** भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे – षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।
2. **प्रबन्ध –** प्राचीनकाल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, रूपक आदि आते थे। प्रबन्ध की चार धातुएँ उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग हैं।
3. **कव्वाली –** कव्वाली गायन शैली का एक प्रकार है। प्रारम्भ में यह मुस्लिम धर्म में अधिकतर भक्ति भाव के लिए गाई जाती थी परन्तु आज इसके कई रूप दिखते हैं।
4. **जाति गायन –** जिस प्रकार वर्तमान में राग गायन प्रचलित है, उसी प्रकार प्राचीन समय में जाति गायन का प्रचलन था।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. **असत्य** **2. असत्य** **3. सत्य** **4. सत्य**

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. पं.दामोदर 2. 12वीं 3. 1907 4. 1955

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1992), संगीत बोध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. राजन, डा0 रेणु, (2010) भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सर्राफ, डॉ0 रमा, (2004) *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण, (1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्रीः

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, वसन्त, (1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति, (1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, (1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्यकाल में मुस्लिम प्रवेश युग के समय संगीत की क्या स्थिति थी? विस्तार में समझाइए।
2. आधुनिक कालीन प्रसिद्ध ग्रंथ एंव संगीतज्ञों के विषय में बताते हुए इस काल का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई 2 – भारतीय संगीत में थाट पद्धति

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भारतीय संगीत में मेल अथवा थाट
2.4 पं. व्यंकटमुखी के 72 थाट
2.4.1 थाट रचना विधि
2.5 पं वि.नारायण भातखंडे के दस थाट
2.5.1 हिन्दुस्तानी संगीत के दस थाट एवं उनके स्वर
2.6 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय संगीत के इतिहास से परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में भारतीय संगीत में थाट पद्धति के विषय में बताया गया है। रागों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में थाट/मेल पद्धति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस इकाई में मेल अथवा थाट के रचना नियमों को भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मेल अथवा थाट के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न रागों के वर्गीकरण की पद्धति को समझ सकेंगे। वर्तमान में राग वर्गीकरण की पद्धतियों में उत्तर भारतीय संगीत में थाट एवं दक्षिण भारतीय संगीत में मेल वर्गीकरण का प्रयोग होता है। इस इकाई के अध्ययन से आप मेल अथवा थाट के रचना नियमों के आधार पर रागों को उसमें प्रयुक्त कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- बता सकेंगे की वर्तमान में राग वर्गीकरण की पद्धति "थाट अथवा मेल वर्गीकरण" वैज्ञानिक एवं सरल है।
- समझा सकेंगे कि थाट एवं मेल वर्गीकरण पद्धति के अन्तर्गत रागों को किन आवश्यक नियमों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।
- बता सकेंगे कि थाट अथवा मेल वर्गीकरण के अन्तर्गत उत्तरी एवं दक्षिणी पद्धति में कौन से प्रमुख रागों को रखा गया है।
- बता सकेंगे कि उत्तरी थाट पद्धति एवं दक्षिणी मेल पद्धति के अन्तर्गत दोनों की वर्गीकरण पद्धति के आधार पर एक नवीन पद्धति का निर्माण किया जा सकता है। जिसमें कुछ ऐसे रागों को भी स्थान प्राप्त हो जो इन पद्धतियों में प्रयुक्त नहीं हो सकते हों।

2.3 भारतीय संगीत में मेल अथवा थाट

ग्राम मूर्च्छना पद्धति के दुर्बोध होने पर मध्य युग में स्वर साम्य के आधार पर राग–वर्गीकरण प्रचार में आया। सर्वप्रथम विजय नगर के मन्त्री माधवाचार्य विद्याचरण ने तत्कालीन 50 रागों को 15 मेलों में वर्गीकृत किया। विजय नगर के ही रामामात्य ने 'स्वरमेल–कलानिधि' में 20 मेल, सोमनाथ ने 'राग विबोध' में 23 मेल, व्यंकटमुखी ने 'चतुर्दण्डी–प्रकाशिका' में अधिकतम 72 मेल बनाने की विधि देकर 19 मेल स्वीकार किए। उत्तर में 'राग–तरंगिणी' में कवि लोचन ने 12 संस्थानों(मेलों) में 75 रागों को स्वर–साम्य के आधार पर वर्गीकृत किया। पुण्डरीक विट्ठल ने 'सद्राग–चन्द्रोदय' में 19 मेल और 'राग–मंजरी' में 20 मेल स्वीकार किए हैं। भावभट्ट ने 'अनूप–संगीत–रत्नाकर' में 20 मेल माने हैं। मेलों की सबसे कम संख्या श्रीकण्ठ ने 'रस कौमुदी' में 9 मानी है। भातखण्डे जी ने उत्तरी–संगीत के लिए अधिकतम 32 मेलों या थाटों में से 10 मेल ही प्रयोग में स्वीकार किए हैं।

ठाठ शब्द से ही ठाट या थाट बना है। थाट शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सोमनाथ ने राग–विबोध में किया है। थाट–पद्धति–वर्गीकरण का अर्थ भी स्वर–साम्य के आधार पर रागों का वर्गीकरण होता है यानी समान स्वरों वाले राग एक वर्ग में रखे जाते हैं। किसी स्वर के परिवर्तन के साथ ही थाट भी बदल जाता है। जैसे शुद्ध स्वरों वाले सभी राग बिलावल थाट के अन्तर्गत रखे जाते हैं। शुद्ध–मध्यम के स्थान पर तीव्र–मध्यम के प्रयोग से बिलावल के स्थान पर वो थाट, कल्याण हो जाएगा क्योंकि कल्याण थाट में तीव्र–मध्यम होता है।

थाट शब्द सितार आदि पर्दे वाले वाद्यों से सम्बन्धित है। जो राग बजाना होता है उससे पहले उस राग विशेष में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को, पर्दों को खिसका कर स्थापित करना होता है। यही ठाठ बाँधना कहलाता है। ठाठ का अर्थ है ढाँचा या फ्रेम। ठाठ तैयार होने पर उस ठाठ में प्रयुक्त स्वरों से सम्बन्धित सभी राग बजाए जा सकते हैं। यानी निश्चित स्वरों वाले रागों का ढाँचा बन जाने पर बिना पर्दों को इधर–उधर किए हुए उन्हीं पर समान स्वरों वाले राग बज सकते हैं। सरस्वती वीणा आदि पर स्थिर पर्दे होते हैं इसलिए ऐसे वाद्यों को अचल–ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है। जिनमें पर्दे खिसकाने पड़ते हैं उन्हें चल–ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है।

2.4 पं0 व्यंकटमुखी के 72 थाट

संगीत के इतिहास से पता चलता है कि संगीत में समय–समय पर अलग–अलग तरह की शैलियों का प्रचार हुआ और उनको भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न वर्गीकरण के अंतर्गत बांटा गया। जैसे रागों का जाति वर्गीकरण, ग्राम वर्गीकरण, शारंगदेव 10 विधि वर्गीकरण, शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग मेल वर्गीकरण आदि।

मेल वर्गीकरण के अंतर्गत मेलों की संख्या के विषय में अनेक मत होने के कारण यह पद्धति धीरे–धीरे समाप्त हो गई। परन्तु 17वीं सदी में दक्षिण के निवासी पं0 व्यंकटमुखी ने चतुर्दण्डिप्रकाशिका नामक ग्रंथ में गणित द्वारा यह सिद्ध किया कि एक सप्तक से अधिक से अधिक 72 मेल या थाट बन सकते हैं। मेलों या थाटों की क्रिया को समझने के लिए इसे मुख्य रूप से चार भागों में बांटा जा सकता है :–

1. थाट की परिभाषा
2. थाट की विशेषताएं
3. स्वरों की विशेषताएं
4. थाट–रचना–विधि

थाट की परिभाषा – सात स्वरों के क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो, को थाट या मेल कहा जाता है। मेल या थाट एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं क्योंकि प्रामाणिक संगीत ग्रंथों में वर्गीकरण की इस श्रेणी के लिए मेल शब्द का प्रयोग किया गया है। अभिवनव राग मंजरी में मेल की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–"मेल स्वर समूहः स्याद्रागव्यंजन शक्तिमान्"

मेल या थाट की विशेषताएं – पं. व्यंकटमखी ने यह स्वीकार किया कि थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए क्योंकि यदि वह सम्पूर्ण ही नहीं होगा तो सम्पूर्ण जाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे रखा जा सकेगा। यहां यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि सम्पूर्ण से भाव 7 स्वरों से है और यह सात स्वर किसी स्वर के दो रूपों को मिलाकर न हों। स्पष्ट अर्थों में स रे ग म प ध नि इनमें कोई भी स्वर को छोड़ा नहीं जा सकता। थाट के सात स्वर क्रमानुसार ही होने चाहिए, जैसे – स रे ग म प ध नि

एक स्वर के दो रूप इकट्ठे प्रयोग नहीं किए जा सकते क्योंकि दो रूप इकट्ठे प्रयोग करने से थाट सम्पूर्ण नहीं हो सकता। परन्तु पं.व्यंकटमुखी के अनुसार एक स्वर के दो रूप इकट्ठे प्रयोग किए जा सकते हैं। दो रूप इकट्ठे प्रयोग करने से किसी अन्य स्वर को तो छोड़ना ही पड़ेगा, जिससे थाट के सात स्वरों के क्रम का प्रयोग भंग हो जाएगा। इस समस्या का समाधान करने के लिए पं. व्यंकटमुखी ने एक स्वर को दो नाम देकर किया, जिससे थाट का नियम भी भंग नहीं हुआ। इसके लिए व्यंकटमुखी की स्वर तालिका देखनी जरूरी है, जिसका वर्णन स्वरों की विशेषताओं में किया गया है।

- थाट या मेल में केवल आरोह का होना ही जरूरी होता है क्योंकि उसके आरोह–अवरोह दोनों के स्वर एक जैसे ही होते हैं।
- थाट गाए/बजाए नहीं जाते इसलिए रंजकता होना जरूरी नहीं है।
- थाट या मेल का नाम उसके अंतर्गत रखे गए प्रसिद्ध राग के नाम के आधार पर रखा गया है। जैसे – बसंत, भैरवी, देशाकसी, नाट, पंतुवली, सिंहरव, कल्याणी आदि(पं. व्यंकटमखी के अनुसार)। कल्याण, तोड़ी, भैरव, भैरवी, बिलावल, काफी, खमाज, आसावरी, मारवा, पूर्वी(पं. भातखण्डे के अनुसार)।

स्वरों की विशेषताएं – स्वरों की विशेषताएं देखने के लिए पं. व्यंकटमुखी की स्वर तालिका को समझना आवश्यक है।

हिन्दुस्तानी स्वर	पं. व्यंकटमुखी के स्वर
स	स
रे कोमल	रे शुद्ध
रे शुद्ध	पंचश्रुति रे या शुद्ध ग
ग कोमल	षट्श्रुति रे या साधारण ग
ग शुद्ध	अंतर ग
म शुद्ध	म शुद्ध
म तीव्र	प्रति म
प	प
ध कोमल	ध शुद्ध
ध शुद्ध	पंचश्रुति ध या शुद्ध नि
नि कोमल	षटश्रुति ध या कैशिक नि
नि शुद्ध	काकली नी

उपर्युक्त स्वर तालिका देखने से यह पता चलता है कि व्यंकटमुखी ने भी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की तरह कुल 12 स्वर ही माने हैं, अन्तर केवल यह है कि पंडित व्यंकटमुखी जी ने एक स्वर के दो नाम रखे।

1. जैसे अगर किसी थाट में दोनों रे अर्थात शुद्ध रे और पंचश्रुति रे इकट्ठे प्रयुक्त होते हैं तो पहला ऋषभ ही रहेगा और दूसरा रे शुद्ध गंधार कहलाएगा।
2. जहां पंचश्रुति ऋषभ होगा वहां षट्श्रुति ऋषभ नहीं होगा।
3. जहां षट्श्रुति ऋषभ होगा वहां साधारण ग नहीं होगा।
4. जहां साधारण ग होगा वहां अन्तर ग नहीं होगा।
5. जहां शुद्ध ध होगा वहां पंचश्रुति नि नहीं होगा।
6. जहां शुद्ध नि होगा वहां षट्श्रुति ध या कैशिक नि नहीं होगा।

7. जहां कैशिक नि होगा वहां काकली नि नहीं होगा।

2.4.1 मेल या थाट रचना–विधि – व्यंकटमुखी ने एक सप्तक के 12 स्वरों सा रे॒ रे ग॒ ग म प ध॒ ध नि॒ नि सां में से तीव्र म को थोड़े समय के लिए निकाल दिया और 12 की संख्या पूरी करने के लिए तार सा जोड़ दिया। इस तरह 12 स्वरों को दो बराबर भागों में बांट लिया। पहले भाग को पूर्वांग और दूसरे भाग को उत्तरांग कहा गया।

पूर्वांग	उत्तरांग
सा रे॒ रे ग॒ ग म	प ध॒ ध नि॒ नि सां

सप्तक में तार सा जोड़ने से स्वरों की गिनती आठ हो गई। थाट रचना में सप्तक के दोनों भागों में चार–चार स्वर होने आवश्यक हैं और उन चार–चार स्वरों में स और म दोनों स्वर पूर्वांग में और प और तार स उत्तरांग में होना जरूरी है।

पूर्वांग	उत्तरांग
1. सा रे॒ रे म	1. प ध॒ ध सां
2. सा रे॒ ग म	2. प ध॒ नि॒ सां
3. सा रे॒ ग॒ म	3. प ध॒ नि॒ सां
4. सा रे ग॒ म	4. प ध नि॒ सां
5. सा रे ग म	5. प ध नि सां
6. सा ग॒ ग म	6. प नि॒ नि सां

इस तरह सप्तक के प्रत्येक भाग में छः–छः नए स्वर स्वरूप प्राप्त हुए। पूर्वांग के प्रत्येक स्वर समूह को बारी–बारी उत्तरांग के स्वर समूहो से मिलाया जाएगा अर्थात् केवल एक स्वर समूह लेना है और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह से मिलाना है। जैसे–

पूर्वांग	उत्तरांग
1. सा रे॒ रे म	प ध॒ ध सां
2. सा रे॒ रे म	प ध॒ नि॒ सां
3. सा रे॒ रे म	प ध॒ नि॒ सां
4. सा रे॒ रे म	प ध नि॒ सां
5. सा रे॒ रे म	प ध नि सां
6. सा रे॒ रे म	प नि॒ नि सां

इस तरह पूर्वांग का तो पहला स्वर समूह लिया गया और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह के साथ जोड़ा गया। उसके पश्चात् इसी तरह पूर्वांग के दूसरे स्वर समूह को लिया जाएगा और उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह से साथ जोड़ा जाएगा। इस तरह छः स्वर समूहों को बार–बार जोड़कर 6 X 6 = 36 थाट मिलेंगे। यह विधि तीव्र म स्वर लगाकर ही करनी है अर्थात शुद्ध म की जगह तीव्र म रहेगा क्योंकि उसको पहले स्वर–समूह से निकाल दिया गया था। जैसे –

पूर्वांग	उत्तरांग
1. सा रे॒ रे मं॑	प ध॒ ध सां
2. सा रे॒ रे मं॑	प ध॒ नि॒ सां
3. सा रे॒ रे मं॑	प ध॒ नि॒ सां
4. सा रे॒ रे मं॑	प ध नि॒ सां
5. सा रे॒ रे मं॑	प ध नि सां
6. सा रे॒ रे मं॑	प नि॒ नि सां

यहां उत्तरांग के स्वरों में कोई अन्तर नहीं आएगा। पूर्वांग में शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का प्रयोग किया गया है। इस तरह इन स्वर समूहों से भी 36 थाट मिलेंगे। 36 थाट शुद्ध मध्यम के साथ और 36 थाट तीव्र मध्यम के साथ कुल मिलाकर 36+36=72 मिलेंगे। इस तरह व्यंकटमुखी ने गणित द्वारा 72 थाटों की रचना की। दक्षिण वालों ने 72 थाटों में से कुल 19 ही चुने, जिसके अंतर्गत अपने रागों का वर्गीकरण किया।

क्रम सं0	मेल–नाम	स्वर
1	मुखारी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे शुद्ध–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध शुद्ध–नि सा रे̲ रे म प ध̲ ध
2	सामवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे̲ ग̲ म प ध̲ नि
3	भूपाल (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे̲ ग̲ म प ध̲ नि
4	हेजुज्जी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध शुद्ध–नि सा रे̲ रे म प ध̲ ध
5	बसन्तभैरवी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे̲ ग म प ध̲ नि
6	गौल (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे̲ ग म प ध̲ नि
7	भैरवी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे ग̲ म प ध̲ नि̲
8	आहीरी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग̲ म प ध̲ नि
9	श्री (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग̲ म प ध नि̲
10	कांभोजी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि̲
11	शंकराभरण (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
12	सामन्त (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प षट–ध काक–नि सा रे̲ ग̲ म प नि̲ नि
13	देशाक्षी (हि0–स्वर)	सा षट–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा ग̲ ग म प ध नि
14	नाट (हि0–स्वर)	सा षट–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प षट–ध काक–नि सा ग̲ ग म प नि̲ नि
15	शुद्धवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे शुद्ध–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे̲ रे म प ध̲ नि
16	पन्तुवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे̲ ग̲ म प ध̲ नि
17	शुद्धरामक्री (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे̲ ग म प ध̲ नि
18	सिंहरव (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग वरा–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग̲ म प ध नि̲

19	कल्याणी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग वरा–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
शब्द संक्षेप :– हि0=हिन्दुस्तानी, साधा=साधारण, अन्त=अन्तर, वरा=वराली, काक=काकली, कैशि=कैशिक, पंच=पंचश्रुतिक, षट=षटश्रुतिक		

2.5 पं वि.नारायण भातखंडे के दस थाट

संगीत के इतिहास से पता चलता है कि रागों को भिन्न–भिन्न समयों में विभिन्न वर्गीकरणों में बांटा गया। जैसे–दस विधि राग वर्गीकरण, शुद्ध–छायालग–संकीर्ण वर्गीकरण, राग–रागिनी वर्गीकरण आदि। 17वीं सदी में व्यंकटमुखी ने गणित के द्वारा यह सिद्ध किया कि एक सप्तक में 72 थाट उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु पंडित भातखण्डे जी ने 10 थाट चुने, जिसके अंतर्गत सारे रागों का वर्गीकरण किया।

पं. भातखण्डे जी ने पं. व्यंकटमुखी के 72 थाटों में से हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के लिए उपयुक्त दस थाट स्वीकार किए जो निम्नलिखित हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, भैरवी, काफी, आसावरी, मारवा, पूर्वी और तोड़ी। सबसे पहले इन थाटों का चयन किसने किया? इस विषय में भी माना जाता है कि भातखण्डे जी ने ही सर्वप्रथम इन्हें निश्चित किया। किन्तु आचार्य बृहस्पति का कहना है कि रामपुर के पुस्तकालय में प्राप्त 'सरमाय–ए–इशरत्' नाम की पुस्तक जो सन् 1858 ई. में लिखी गई है, उसमें इन्हीं दस थाटों का उल्लेख सबसे पहले मिलता है। इस पुस्तक का उल्लेख भातखण्डे जी ने भी किया है अतः यह कहा जा सकता है कि कदाचित् भातखण्डे जी को इन दस थाटों का विचार इसी पुस्तक से मिला होगा। जो भी हो लेकिन इनका प्रचार तो निश्चित रूप से भातखण्डे जी ने ही किया है।

थाट परिभाषा – थाट या मेल एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। सात स्वरों का वह क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो, थाट कहलाता है। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में थाट को जनक(जन्म देने वाला) और रागों को जन्य(जन्म लेने वाला) कहा गया है। रागों के विशेष स्वर समूहों को देखकर विशेष थाट के अंतर्गत रखा जाता है। उत्तर भारतीय संगीत में थाटों की संख्या दस मानी गई है और वह हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, भैरवी, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, तोड़ी। क्योंकि थाट उस स्वर–समूह रचना को कहा जाता है जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो इसलिए थाट के विशेष नियम बनाए गए हैं।

थाट के नियम :–

1. थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए। यदि वह स्वयं ही सम्पूर्ण नहीं होगा अर्थात् उस स्वर समूह में 7 स्वर नहीं प्रयोग किए जाएंगे तो सम्पूर्ण जाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे माना जा सकता है।
2. थाट में सात स्वरों को क्रमानुसार होना चाहिए जैसे स के बाद रे और रे के बाद ग इत्यादि।
3. थाट में केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वर, जाति आदि रूप में कोई अंतर नहीं आता।
4. थाट को गाया–बजाया नहीं जाता इसलिए, इसमें रंजकता का होना आवश्यक नहीं।
5. थाट में एक स्वर के दो रूप(शुद्ध और विकृत) एक साथ नहीं हो सकते क्योंकि ऐसा करने से किसी और स्वर को वर्जित करना पड़ेगा, जो कि थाट के नियम के विरूद्ध है। किन्तु दक्षिणी पद्धति में ऐसा कर लिया जाता है। एक स्वर के दो रूप एक साथ प्रयोग करने के साथ ही उनका थाट सम्पूर्ण रहता है क्योंकि उन्होंने एक स्वर के दो या दो से ज्यादा नाम दिए हैं। उदाहरण के लिए अगर किसी थाट में दोनों ऋषभ अर्थात शुद्ध रे तथा चतुश्रुतिक रे प्रयोग किए जाएंगे तो पहले रे ऋषभ ही रहेगा और दूसरे को शुद्ध गन्धार कहा जाएगा। इस प्रकार राग की दृष्टि में तो हो जाता है परन्तु असल में नहीं होता क्योंकि नाम बदलने से स्वर–स्थान नहीं बदलते।
6. थाट का नाम उसके अंतर्गत माने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर रखा गया है, जैसे–नि रे ग म॑ प ध नि सां ऐसे स्वर समूह को कल्याण थाट कहा गया है क्योंकि कल्याण में तीव्र मध्यम का प्रयोग किया

जाता है। इसी प्रकार और रागों के नाम जिनके स्वर समूह थाट के स्वर समूहों के अनुसार थे, अर्थात् विशेष विशेषताएं थी, उन्हें रागों का नाम दिया गया है। जैसे–खमाज, काफी, भैरव, भैरवी आदि। जिन रागों के नाम के आधार पर थाट का नामकरण हुआ, उनको आश्रय राग कहा गया। थाटों की संख्या कुल 10 मानी गई है। इसलिए आश्रय राग भी 10 ही हैं।

2.5.1 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के थाट और उसके स्वर :–

1. **बिलावल थाट** : इसमें स्वर शुद्ध ही लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
2. **कल्याण थाट** : इसमें मध्यम तीव्र लगेगा बाकी सारे स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग मं प ध नि।
3. **खमाज थाट** : इस थाट में नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
4. **काफी थाट** : इस थाट में ग व नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
5. **आसावरी थाट** : इसमें ग ध नि कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
6. **भैरवी थाट** : इसमें रे ग ध नि कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
7. **भैरव थाट** : इस थाट में रे ध स्वर कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
8. **पूर्वी थाट** : इसमें रे ध कोमल व तीव्र म प्रयोग किया जाता है। स रे ग मं प ध नि।
9. **मारवा थाट** : इस थाट में रे कोमल, म तीव्र और बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग मं प ध नि।
10. **तोड़ी थाट** : इस राग में रे ध कोमल और मध्यम तीव्र लगता है। स रे ग मं प ध नि।

इन थाटों में दिए गए स्वरों की तुलना उन विशेष रागों के स्वरों से न की जाए क्योंकि रागों में स्वरों का चलन विशेष राग में वर्जित स्वर, विशेष स्वर का प्रयोग आदि होता है। परन्तु थाट में ऐसा नहीं होता है। यह थाट का नियम माना जाता है।

दस थाटों की वैज्ञानिकता – भातखण्डे जी ने तो केवल इतना ही कहा कि व्यंकटमुखी के 72 मेलकर्ताओं में से हिन्दुस्तानी–पद्धति के लिए यही दस थाट उपयुक्त हैं। आगे चलकर प्रो0 ललित किशोर सिंह जो स्वयं भौतिक–शास्त्र के ज्ञाता थे, ने इन दस थाटों पर ध्वनि–विज्ञान के नियमों के अनुसार इनकी वैज्ञानिकता पर विशद् विचार किया और यह सिद्ध किया कि केवल यही दस थाट 72 मेलों में से वैज्ञानिक नियमों पर खरे उतरते हैं। यहाँ इसी बिन्दु पर कुछ विचार किया जाएगा।

1. सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों में से थाट के लिए सात स्वर क्रमानुसार होने चाहिए।
2. प्रत्येक थाट में षड्ज, पंचम के अतिरिक्त दोनों मध्यमों में से किसी एक का होना आवश्यक है।
3. रे रे ग ग ध ध नि नि में से दो पूर्वांग और दो उत्तरांग में होने चाहिए।
4. शुद्ध और विकृत रूपों में से किसी एक का होना आवश्यक है।
5. उस थाट में प्रत्येक स्वर का 'षड्ज–मध्यम' या 'षड्ज–पंचम' संवाद होना आवश्यक है।
6. तीव्र मध्यम के साथ शुद्ध निषाद तथा साथ ही कोमल रे या शुद्ध गंधार का होना अति आवश्यक है।

राग और थाट की तुलना :–

1. प्रत्येक राग को किसी न किसी थाट के अंतर्गत माना गया है, जबकि थाट की उत्पत्ति सात स्वरों के समूह से होती है जिसमें स्वर में एक स्वर का कोई भी रूप(शुद्ध या विकृत) प्रयोग हो सकता है।
2. राग में कम से कम पांच और ज्यादा से ज्यादा सात स्वर प्रयोग किए जा सकते हैं, परन्तु थाट में सात स्वरों का होना जरूरी है। अगर थाट स्वयं ही सम्पूर्ण नहीं होगा तो इसके अंतर्गत सम्पूर्ण जाति के राग को कैसे रखा जा सकता है।
3. राग में स्वरों का क्रमवार होना जरूरी नहीं है। राग के चलन अनुसार विभिन्न स्वर समूहों अनुसार, वादी–संवादी के अनुसार राग में स्वरों का प्रयोग किया जाता है। थाट में सात स्वर समूहों को क्रमानुसार होना जरूरी है। जैसे – सा रे ग म प ध नि।

4. राग में आरोह–अवरोह दोनों का होना जरूरी है। केवल आरोह में राग की पहचान नहीं हो सकती क्योंकि राग के आरोह–अवरोह में स्वरों की गिनती अलग–अलग भी हो सकती है। जैसे किसी राग के आरोह में अगर सात स्वर लगते हैं तो यह जरूरी नहीं कि उसके अवरोह में भी सात स्वर ही लगेंगे अर्थात उसके अवरोह में छः या पांच स्वर भी लग सकते हैं। थाट में केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वर, जाति आदि रूप में कोई अंतर नहीं आता।
5. राग में रंजकता का होना जरूरी है क्योंकि राग का मुख्य उद्देश्य रंजकता को उत्पन्न करना है परन्तु थाट में रंजकता का होना जरूरी नहीं है क्योंकि थाट गाया–बजाया नहीं जाता।
6. राग के आरोह–अवरोह में स्वरों की गिनती भिन्न होने के कारण राग की मुख्य तीन जातियां हैं– सम्पूर्ण, षाडव और औड़व। परन्तु थाट की जातियां नहीं होती क्योंकि उसके आरोह के स्वरों में कोई भी स्वर वर्जित नहीं किया जाता।
7. राग स्वतंत्र होते हैं, अर्थात उनको कोई भी नाम दिया जा सकता है। थाटों का नामकरण उसके अंतर्गत माने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम के आधार पर किया गया है। जैसे काफी, खमाज, बिलावल, भैरव, भैरवी आदि यही नाम रागों के भी हैं और यही थाटों के भी।
8. रागों की संख्या निश्चित नहीं है। राग नए बनते रहते हैं परन्तु थाटों की संख्या हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अनुसार 10 है। इन 10 थाटों के अन्तर्गत ही सभी रागों को रखा जाता है।
9. थाट को जनक और उसके अंतर्गत माने गए रागों को जन्य कहा गया है।

2.6 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति

जिस प्रकार व्यंकटमुखी ने गणितानुसार 72 थाटों की रचना की, उसी प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति हो सकती है। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति के स्वरों में वह विशेषता नहीं है जो कर्नाटकी संगीत–पद्धति में है। अर्थात् एक स्वर के दो नाम नहीं हैं। स्वरों को क्रमानुसार रखने के लिए एक स्वर के दो रूप(शुद्ध तथा विकृत) नहीं हो सकते। इसलिए इस पद्धति के अनुसार गणित द्वारा 72 थाट न बनकर केवल 32 थाट बन सकते हैं।

सप्तक का शुद्ध मध्यम वाला 12 स्वरों का समूह स रे॒ रे ग॒ ग म प ध॒ ध नी॒ नी सां है और इसके पूर्वाद्ध तथा उत्तरार्द्ध भागों के स्वर–समूह इस प्रकार होंगेः–

पूर्वाद्ध	उत्तरार्द्ध
(सा रे॒ रे ग॒ ग म)	(प ध॒ ध नि॒ नि सां)
(1) सा रे॒ ग म	(1) प ध॒ नि सां
(2) सा रे॒ ग॒ म	(2) प ध॒ नि॒ सां
(3) सा रे ग॒ म	(3) प ध नि॒ सां
(4) सा रे ग म	(4) प ध नि सां

पूर्वाद्ध तथा उत्तरार्द्ध के स्वर – समूहों को मिलाने से हमको कुल 4X4=16 थाट प्राप्त होंगे। ये 16 थाट शुद्ध मध्यम के और इसी प्रकार 16 थाट तीव्र मध्यम के होंगे। अब कुल मिलाकर 16+16=32 थाट हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के स्वरों के अनुसार बन सकते हैं।

उपर लिखे थाट गणित द्वारा निकाले गए हैं, पर इनको हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में मान्यता प्राप्त नहीं है। केवल इनमें से 10 थाटों को हिन्दुस्तानी संगीत ने ग्रहण किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में केवल 10 थाट माने जाते हैं और उन्हीं 10 थाटों के अन्तर्गत सब राग गाए व बजाए जाते हैं। ये दस थाट हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, काफी, पूर्वी, मारवा, भैरव, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी। आधुनिक समय में इन 10 थाटों पर खूब वाद–विवाद चल रहा है। कुछ लोगों का विचार है कि बहुत से राग इन थाटों के अन्तर्गत नहीं आ सकते, इसलिए इन थाटों की संख्या बढ़ानी चाहिए। परन्तु अभी तक कोई ऐसा सुझाव नहीं मिल सका है जो सर्वमान्य हो।

इसी प्रकार कर्नाटकी संगीत–पद्धति में 72 थाट व्यंकटमुखी ने गणित द्वारा निकाले हैं पर उन्हें शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग तो थाट में आरोह–अवरोह दोनों रखकर गणित द्वारा कर्नाटकी पद्धति के अनुसार कुल 72X72=5184 थाट बनाते हैं। परन्तु ये सब शास्त्रीय नहीं हैं। 72 थाटों में से केवल 19 थाट दक्षिणी संगीत–पद्धति में माने जाते हैं, जिनके अन्तर्गत ही वहाँ के सब राग गाए व बजाए जाते हैं। ये 19 मेल अथवा थाट (1)मुखारी (2)भूपाल (3)सालबरीली (4)गौल (5)अहोरी (6)बसन्तभैरवी (7)श्रीराग (8)भैरवी (9)कांभोजी (10)शंकराभरण (11)सामन्त (12)हैजुज्जी (13)नाट (14)शुद्धबराली (15)देशाक्षी (16)पंतुवराली (17)सिंहरव (18)शुद्ध रामक्रिया (19)कल्याणी, कर्नाटकी संगीत में प्रचलित हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. पं. भातखंडे के दस थाटों की वैज्ञानिकता को समझाइए।
2. हिन्दुस्तानी संगीत के दस थाटों में लगने वाले स्वरों को बताइए।
3. राग एवं थाट के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
4. मध्ययुग में मेल अथवा थाट वर्गीकरण का क्या अस्तित्व था।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. संगीत रत्नाकर में 21 मेल माने गए हैं।
2. दक्षिण संगीत पद्धति में 72 थाटों में से 19 का ही प्रयोग होता है।
3. थाट पद्धति के नियमानुसार थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए।
4. मारवा थाट में मध्यम स्वर शुद्ध होता है।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. रे ग ध नि स्वर कोमल _____ थाट में होते हैं।
2. हिन्दुस्तानी संगीत का शुद्ध ग दक्षिणी संगीत के _____ग के समान है।
3. पं. व्यंकटमुखी ने _____ग्रन्थ में 72 थाटों की रचना की है।
4. रामामात्य ने स्वरमेल कलानिधी में _____मेलों की रचना बताई है।

2.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत में थाट पद्धति के विषय में जान चुके होंगे। रागों का पारिवारिक वर्गीकरण मध्ययुग की उपज है। रागों के वर्गीकरण के मेल राग वर्गीकरण की पद्धति दक्षिणी संगीत की महत्वपूर्ण देन है। रामामात्य, लोचन, विट्ठल, सोमनाथ, व्यंकटमुखी इत्यादि पण्डित इसी पद्धति के समर्थक रहे। आरम्भ में 15 मेल माने गए तथा बाद में पं. व्यंकटमुखी ने सप्तक के अन्तर्गत 12 स्वर स्थानों के आधार पर 72 मेलों की रचना की। उत्तरी संगीत में मेल राग वर्गीकरण मान्य नहीं रहा। वर्तमान शताब्दी में पं. भातखंडे जी ने 72 मेलों से वर्तमान आवश्यकतानुसार केवल 10 मेलों या थाटों को पर्याप्त माना। आधुनिक काल में प्रचलित राग वर्गीकरण पद्धतियों में थाट पद्धति ही व्यापक तथा सुविधाजनक होने के कारण उपयुक्त मानी जाती है। पं. वि.नारायण भातखंडे जी ने संगीत के सिद्धांतों व क्रियात्मक रागों के स्वर रूपों को समझाते हुए कहा कि आवश्यकतानुसार गुणि जनों की राय से अधिक थाटों की संख्या निश्चित की जा सकती है। अतः इन्होंने उत्तर भारतीय संगीत को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। आप थाट पद्धति के नियमों से भी परिचित हो चुके होंगे।

2.8 शब्दावली

1. द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे–षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।

2. **आश्रय राग** – जनक राग, मेल राग(थाट का समान राग)

3. **शुद्ध, छायालग, संकीर्ण** – अपने मूलभूत स्थान पर स्थित राग(शुद्ध), वह राग जिस पर किसी अन्य राग की छाया हो(छायालग) तथा समिश्र राग प्रकार (संकीर्ण) कहलाते हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1 असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1 भैरवी 2. अन्तर 3. चतुर्दण्डी प्रकाशिका 4. 20

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, शरच्चन्द्र श्रीधर, (1969), भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. वसन्त, (1997), *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1972), *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
4. गोबर्धन, शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2*, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भातखंडे, पं0 विष्णु नारायण, *संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभद्रा, *संगीत संचयन*, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, राजस्थान।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं. भातखण्डे द्वारा निर्मित दस थाटों की विस्तार से व्याख्या कीजिए तथा उनकी विशेषताएं एवं रचना नियम भी समझाइए।
2. पं. व्यंकटमुखी के 72 थाटों की रचना विधि का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इका ई 3 – श्रुति एवं स्वर की व्याख्या (प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार); दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 श्रुति और स्वर विभाजन
3.4 प्राचीन काल में श्रुति और स्वर
3.5 मध्यकाल में श्रुति और स्वर
3.6 आधुनिक काल में श्रुति और स्वर
3.7 दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय संगीत के इतिहास से परिचित हो चुके होंगे। आप थाट पद्धति को भी जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में विस्तार से बताया गया है। इसमें प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार स्वर एवं श्रुति की स्थिति. एवं स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। इसमें विद्वानों के मतों को भी बताया गया है। इसमें बताया गया है कि संगीत में श्रुति एवं स्वर का क्या अस्तित्व है तथा श्रुति एवं स्वरों की संख्या एवं स्वरूप क्या है। संगीत में स्वर की परम्परा प्राचीन समय से किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। इस इकाई में आपको दक्षिण भारतीय संगीत के विषय में भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप श्रुतियों पर स्वर स्थापना(प्राचीन से वर्तमान तक) को समझ सकेंगे। साथ ही स्वर की शुद्ध एवं विकृत स्थिति एवं उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को भी आप इस इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी समझ सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि भारतीय संगीत के मूल आधार स्वर को प्राचीन से आधुनिक काल तक स्थापित करने हेतु क्या प्रणाली रही है।
- समझ सकेंगे कि शुद्ध एवं विकृत स्वरों में परस्पर क्या सम्बन्ध रहा है तथा सप्तक की 22 श्रुतियों में इसकी स्थापना का मुख्य आधार क्या रहा है।
- समझा सकेंगे कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के प्रसिद्ध विद्धानों के साथ–साथ समकालीन विद्धानों के स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में क्या मत हैं।
- बता सकेंगे कि विभिन्न विद्वानों द्वारा स्वर एवं श्रुति का सम्बन्ध किस प्रकार अन्य से स्थापित किया गया है।
- आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी जान सकेंगे।

3.3 श्रुति और स्वर विभाजन

इसके पहले कि हम श्रुति–स्वर विभाजन को समझें यह आवश्यक है कि श्रुति तथा स्वर पर अलग–अलग विचार कर लें।

श्रुति – संस्कृत में 'श्रु' शब्द का अर्थ होता है 'सुनना'। इसलिए श्रुति का अर्थ हुआ 'सुना हुआ'। प्राचीन ग्रन्थकारों ने भी श्रुति की परिभाषा इस प्रकार की है, 'श्रुयते इति श्रुतिः'। अर्थात जो ध्वनि कानों को सुनाई पड़े वही श्रुति है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर यह परिभाषा पूर्ण नहीं है, क्योंकि श्रुति का संगीतोपयोगी होना आवश्यक है और कानों को तो अनेक ऐसी ध्वनियां सुनाई पड़ सकती हैं जिनका सम्बन्ध संगीत से बिल्कुल नहीं है। इसलिए इतना कह देना कि जो ध्वनि कानों को सुनाई पड़े वही श्रुति है, पर्याप्त नहीं है। आधुनिक काल के ग्रन्थकारों ने श्रुति की पूर्ण परिभाषा इस प्रकार की हैः–

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुतिलक्षणम्।।

अर्थात् वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो एक–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके उसे श्रुति कहते हैं। 'अलग' तथा 'स्पष्ट' शब्द यहाँ पर बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि श्रुति का यह गुण है कि उसे कानों को स्पष्ट सुनाई पड़ना चाहिए तथा पास की दो श्रुतियों में इतना अन्तर होना चाहिए कि वे एक–दूसरे से अलग पहचानी जा सकें। इसलिए संगीत के विद्वानों का विचार है कि ऐसी ध्वनियाँ जो एक दूसरे से अलग तथा कानों को स्पष्ट सुनाई पडें, श्रुति कहलाएंगी। एक सप्तक में कुल 22 श्रुतियां हो सकती हैं। कहने का अर्थ यह हुआ कि मध्य सा से तार सा(एक सप्तक) के बीच में केवल 22 श्रुतियाँ हो सकती हैं।

स्वर – एक सप्तक की 22 श्रुतियों में से चुनी गयी 7 श्रुतियाँ जो एक दूसरे से काफी अन्तर पर स्थापित हैं तथा जो सुनने में मधुर हैं, स्वर कहलाती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रुति और स्वर में अन्तर नहीं है। केवल अन्तर यह है कि 22 श्रुतियों में से दूर–दूर की 7 श्रुतियाँ छाँट ली गई और उन्हीं छाँटी गई 7 श्रुतियों को शुद्ध स्वरों के नाम से पुकारा जाता है। सात स्वरों को षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद के नामों से पुकारा जाता है। "संगीत रत्नाकर" नामक ग्रन्थ में स्वर की परिभाषा इस प्रकार की गई हैः–

श्रुत्यन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रन्जयतिश्रोतृचितं स स्वर उच्यते।।

अर्थात् वे मधुर ध्वनियाँ, जो बराबर स्थिर रहें तथा जिनकी झनकार मन को लुभाने वाली हों, स्वर कहलाती हैं।

स्वरों की उत्पत्ति – वैदिक काल में तीन स्वरों का प्रचार था और वे स्वर–उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहलाते थे। उदात्त ऊँचे स्वर को कहते थे तथा अनुदात्त नीचे स्वर को। स्वरित स्वर के लिए कोई निश्चित मत नहीं था। कुछ लोग इस स्वर को उदात्त तथा अनुदात्त स्वरों के बीच का स्वर मानते थे, कुछ लोग इसे उदात्त से ऊँचा स्वर मानते थे तथा कुछ लोग इसे अनुदात्त से नीचा का स्वर मानते थे। इस प्रकार उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, ये तीनों स्वर थे जो क्रमशः गांधार, ऋषभ तथा षड्ज स्वरों के समान माने जा सकते हैं। वैदिक काल में इन तीनों स्वरों को प्रथमा, द्वितीया और तृतीया के नामों से पुकारा जाता था। ऐसा भास होता है कि गांधार स्वर प्रथम होने के कारण उस समय गांधार ग्राम का प्रचार था। कुछ समय के बाद वैदिक काल में ही इन तीन स्वरों के अलावा गांधार से एक ऊँचा स्वर 'चतुर्थ' नाम से प्रचार में आया। इस चौथे स्वर को कुछ लोग 'कुष्ठा' के नाम से पुकारते थे तथा इसे मध्यम स्वर के अनुरूप मानते थे। इस प्रकार अब कुल मिलाकर 'सा रे ग म' ये चार स्वर प्रचार में आ गए थे। मध्यम स्वर के आने से मध्यम ग्राम प्रचार में आया। यह बात हमको ध्यान में रखनी चाहिए कि वैदिक स्वरों में षड्ज–पंचम भाव की प्रधानता थी और इस कारण पंचम, धैवत तथा निषाद ये तीन अन्य स्वर प्रचार में आए। स्वर–संवादित्व के अनुसार प्रथमा अथवा उदात्त के

अन्तर्गत गांधार तथा निषाद स्वर हुए, द्वितीया अथवा अनुदात्त के अन्तर्गत ऋषम तथा धैवत स्वर हुए और तृतीया अथवा स्वरित के अन्तर्गत षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वर हुए। इस प्रकार सातों स्वर प्रचार में आए। 'नारदीय शिक्षा' नामक ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख मिलता है:–

उदात्ते निषाद गांधारौ, अनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते, षड्जमध्यमपंचमाः।।

शिक्षाकार ने नारदीय शिक्षा में, यद्यपि श्रुति की परिभाषा अथवा व्याख्या नहीं दी है तथापि उन्होंने भी श्रुति को महत्व दिया है। इसी प्रकार यद्यपि शिक्षाकार ने श्रुति–संख्या का भी उल्लेख नहीं किया तथापि ग्रामोल्लेख, साधारण स्वरोल्लेख तथा पंचम व धैवत की ह्रास एवं वृद्धि विषयक उल्लेखों से आभास होता है कि शिक्षाकार को बाईस श्रुतियों का ज्ञान था।

शिक्षाकार ने पांच श्रुति जातियों का भी नामोल्लेख किया है, परंतु वे श्रुति–जातियाँ अधिक स्पष्ट नहीं हैं। शिक्षाकार ने श्रुति जातियों पर चर्चा करते हुए कहा है कि आयता जाति का प्रयोग नीचे के स्वरों में, मृदु जाति का उसके विपरित अर्थात् उच्च स्वरों में तथा मध्या जाति का प्रयोग अपने स्वर में अर्थात् समान स्वरों में होता है। इस कथन से तात्पर्य यह भी हो सकता है कि अनुदात्त स्वरों में आयता, उदात्त में मृदु तथा स्वरित स्वरों में मध्या श्रुति–जाति का प्रयोग होता है। परंतु श्रुति जातियों का प्रयोजन एवं उनके वास्तविक लक्षण अथवा स्वरुप के वर्णन प्राप्त न होने के कारण शिक्षाकारोक्त श्रुति–जातियाँ स्पष्ट नहीं हो पाती। शिक्षाकार ने वैदिक स्वरों के अन्तर्गत भी श्रुति–जातियों का उल्लेख किया है। इसके अंतर्गत शिक्षाकार ने द्वितीय स्वर(वेणु का गान्धार) की श्रुति जातियाँ–मृदु, मध्या तथा आयता बताई हैं। यदि वैदिक संगीत का द्वितीय स्वर, लौकिक संगीत का गान्धार है, जैसा सामान्यतया माना जाता है, तब यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि गान्धार स्वर द्विश्रुतिक स्वर है। इस प्रकार उपरोक्त कथन में यह भी स्पष्ट नहीं होता कि द्वितीय स्वर गान्धार है अथवा लौकिक संगीत का द्वितीय स्वर–ऋषभ।

नारदीय शिक्षा में वर्णित स्वरोल्लेखों के इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन संगीत दो भिन्न–भिन्न धाराओं में प्रचलित था–वैदिक संगीत तथा लौकिक संगीत। तत्कालीन समाज में इन दोनों प्रकार की संगीत शैलियों का प्रचार था तथा लौकिक संगीत को प्राचीन गौरवमय वैदिक परम्परा से सम्बद्ध करने की प्रथा का चलन था। इसी क्रम में वैदिक संगीत के स्वरों तथा लौकिक संगीत के स्वरों की नारदीय शिक्षा में, तुलना की गई। इसी प्रकार लौकिक स्वरों की जातियों, उनके वर्ण, गायक, शरीरगत उत्पत्ति स्थान, देवता आदि उल्लेखों से भी यही संकेत प्राप्त होते हैं।

पाणिनि के समय तक संगीत के सातों स्वर प्रचार में आ चुके थे। यही सात स्वर तथा उनके पाँच विकृत रूप मिलाकर 12 स्वर आजकल प्रचलित हैं। प्राचीन समय में कुछ लोगों का विचार था कि 7 स्वरों की उत्पत्ति अनेक पशु–पक्षियों द्वारा हुई। ग्रन्थों में भी इस बात का उल्लेख इस प्रकार मिलता है:–

मयूर चातकच्छाग क्रौंच कोकिल दुर्दुरा।
गजश्च सप्त षड्जादोन् क्र मा दुच्चारयन्त्यमी।।

अर्थात् मयूर से 'सा', चातक से 'रे', छाग से 'ग', कौंच से 'म', कोकिल से 'प', दादुर से 'ध' तथा हस्ति से 'नि' स्वर उत्पन्न हुआ। कुछ लोगों ने 7 स्वरों को अलग जातियों में विभाजित किया। उनके मतानुसार सा, म तथा प स्वर ब्राह्मण जाति के, रे तथा ध स्वर क्षत्रिय जाति के और ग तथा नि स्वर वैश्य जाति के हैं। इसी प्रकार कुछ लोगों ने सात स्वरों की उत्पत्ति विभिन्न देवताओं से भी मानी, परन्तु ये सब मत निराधार हैं। उदाहरण के लिए पशु–पक्षियों से स्वरों की उत्पत्ति वाला मत लीजिए। प्रारम्भिक अवस्था में जब लोगों को स्वरों का बिल्कुल ज्ञान नहीं था उस समय यह पता लगाना एक असम्भव बात थी कि मयूर से चातक की ध्वनि ऊँची है अथवा क्रौंच से कोकिल की ध्वनि ऊँची है इत्यादि। यदि कोकिल की ध्वनि क्रौंच पक्षी से ऊँची भी है तो वह किस स्वर में बोलती है, इसका कोई मापदण्ड तो मालूम नहीं था। इसीलिए यह कहना कि ऊपर लिखे पशु–पक्षियों द्वारा सात स्वर निकले,

कोई सार नहीं रखता। यह तो स्वर–ज्ञान होने पर लोगों के ध्यान में आया कि ऊपर लिखे पशु–पक्षियों द्वारा हमको विभिन्न सात स्वर प्राप्त हो सकते हैं।

यह एक स्वाभाविक बात है कि प्रत्येक वस्तु का क्रमिक विकास होता है। यह सम्भव नहीं कि पुराने समय में एक साथ ही सात स्वरों की उत्पत्ति हुई बल्कि उसका भी विकास धीमें–धीमें ही हुआ।

श्रुति–स्वर विभाजन – सप्तक की बाईस श्रुतियों को सात स्वरों में बाँट दिया गया है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक यदि हम श्रुति–स्वर विभाजन का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट होता है कि तीनों कालों(प्राचीन, मध्य व आधुनिक) के ग्रन्थकारों ने यह विभाजन नीचे लिखे सिद्धान्त के आधार पर किया:–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ।।

अर्थात षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ, निषाद तथा गांधार में दो–दो श्रुतियाँ, ऋषभ तथा धैवत स्वरों में तीन–तीन श्रुतियाँ हैं। इस सिद्धान्त को तीनों कालों के ग्रन्थकार अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना बाईस श्रुतियों पर अलग–अलग ढंग से करते हैं। अतएव अब हम तीनों कालों के ग्रन्थकारों का श्रुति–स्वर विभाजन अलग–अलग समझेंगे।

3.4 प्राचीन काल में श्रुति और स्वर

प्राचीन ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ भरत का 'नाट्यशास्त्र' तथा शारंगदेव का 'संगीत रत्नाकर' है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' का रचना–काल पाँचवीं शताब्दी तथा शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' का रचना–काल 13वीं शताब्दी का माना जाता है। इन ग्रन्थकारों ने अपने शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर की है। कहने का अर्थ यह है कि यदि 'सा' में चार श्रुतियाँ हैं तो 'सा' की स्थापना इन चार श्रुतियों की अन्तिम श्रुति यानी चौथी श्रुति पर की है। इस प्रकार उनसे सात शुद्ध स्वर नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित थे, सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर।

भरत ने ऊपर लिखे 7 स्वरों के अतिरिक्त अन्तर गांधार और 'काकली निषाद' इन दो विकृत स्वरों का भी उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। इससे यह पता चलता है कि भरत के समय में शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर 9 स्वर प्रचार में थे। परन्तु शारंगदेव के ग्रन्थ में शुद्ध तथा विकृत मिलाकर कुल 14 स्वरों का वर्णन मिलता है। ये 14 स्वर इस प्रकार थे:– (1)कौशिक 'नि' (2)काकली 'नि' (3)च्युत 'सा' (4)अच्युत 'सा' (5)विकृत 'रे' (6)'ग' (7)साधारण 'ग' (8)अन्तर 'ग' (9)च्युत 'म' (10)अच्युत 'म' (11)कौशिक 'प' (12)'प' (13)विकृत 'ध' (14) 'नि'।

आगे सरलता के लिए भरत तथा शारंगदेव के शुद्ध और विकृत स्वरों को 22–22 श्रुतियों पर स्थापित किया जाता है:–

क्र . सं.	श्रुति का नाम	भरत के स्वर	शारंगदेव के स्वर
1	तीव्रा		कौशिक 'नि'
2	कुमुद्वती	काकली 'नि'	काकली 'नि'
3	मन्द्रा		च्युत 'सा'
4	छंदोवती	'सा'	अच्युत 'सा'
5	दयावती		
6	रंजनी		
7	रक्तिका	'रे'	विकृत 'रे'
8	रौद्री		

9	क्रोधा	'ग'	'ग'
10	वज्रिका		
11	प्रसारिणी	अन्तर 'ग'	साधारण 'ग'
12	प्रीति		अन्तर 'ग'
13	मार्जनी	'म'	च्युत 'म'
14	क्षिती		
15	रक्ता		अच्युत 'म'
16	संदीपनी	'प'	कौशिक 'प'
17	आलापिनी		'प'
18	मदन्ती		
19	रोहिणी		
20	रम्या	'ध'	विकृत 'ध'
21	उग्रा		
22	क्षोभिणी	'नि'	'नि'

स्वर' ही तो संगीत का पर्याय है। इसलिए 'स्वर' के साथ जिन पशु–पक्षियों के सम्बन्धों की चर्चा प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने की है वह भी एक प्रकार से उपर्युक्त कारणों से जुड़ी हुई है। षडजादि 'स्वरों' से जिन पक्षियों और पशुओं की ध्वनियों का सम्बन्ध जोड़ा गया है उसे इसी कारण न तो कोरी कल्पना कहा जा सकता है और न ही इन विचारों को किसी अन्य दृष्टि से निराधार कहा जा सकता है।

संगीत मकरंद में नारद ने षडजादि स्वरों के साथ पक्षियों या पशुओं की ध्वनि का सम्बन्ध बताया है, उन सब में समानता अधिक है और भिन्नता कम। षडज, पंचम और निषाद–इन तीन स्वरों के साथ मोर, कोयल और हाथी की ध्वनियों के सम्बन्ध में तो इस वर्ग के सभी विद्वान एकमत हैं शेष स्वरों में भी कोई बहुत बड़ा मतभेद नहीं है।

प्राचीन काल के ग्रन्थकारों में एक अन्य विशेषता यह भी थी कि वे सप्तक की 22 श्रुतियों को समान मानते थे। उनके प्रत्येक पास–पास की दो श्रुतियों का अन्तर समान होता था अर्थात जितना अन्तर पहली श्रुति और दूसरी श्रुति में था उतना ही अन्तर दूसरी व तीसरी श्रुति में था। इस प्रकार सारी श्रुतियाँ समानान्तर पर थी। समानान्तर पर होने से उनकी आपस की दो श्रुतियों का अन्तर एक 'प्रमाण' बन गया था और वे इस अन्तर को 'प्रमाण श्रुति' कहकर पुकारते थे। प्राचीन काल में वे लोग स्वरों को श्रुतियों के नाम से पुकारते थे, क्योंकि वे एक सप्तक के 22 बराबर–बराबर भाग करते थे। इस प्रकार वह किसी भी स्वर को श्रुति से नाप सकते थे।

3.5 मध्यकाल में श्रुति और स्वर

यह समय 14वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में हमको उत्तर–हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चार प्रमुख ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं–(1) कवि लोचन की लिखी "राग–तरंगिणी" जो लगभग 15वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखी गई (2) पं. अहोबल कृत "संगीत पारिजात" जो 17वीं शताब्दी में लिखी गई (3) हृदय नारायण देव कृत "हृदय कौतुक" और "हृदय प्रकाश" जो 17वीं शताब्दी के अन्त में लिखी गई (4) पं. श्रीनिवास कृत "राग तत्व विबोध" जो 18वीं शताब्दी में लिखा गई।

प्राचीन काल के ग्रन्थकारों की तरह मध्यकालीन संगीत ग्रन्थकारों ने भी अपने 7 शुद्ध स्वरों की स्थापना "चतुश्चैव" वाले सिद्धान्त को मानकर स्वरों की अन्तिम श्रुति पर की है। अर्थात् मध्यकालीन शुद्ध स्वर भी प्राचीन काल की तरह 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित हैं– सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर।

कवि लोचन के ग्रन्थ "राग तरंगिणी" में 18 स्वरों का वर्णन मिलता है। लोचन अपने शुद्ध 'रे', 'म' तथा 'नि' स्वरों को क्रमशः तीव्र 'रे', अति तीव्रतम 'ग' तथा तीव्रतर 'ध' कहकर पुकारते थे। उन्होंने अपने विकृत स्वर, शुद्ध स्वर के ऊपर स्थापित किए हैं। जैसे शुद्ध ग के बाद तीव्र 'ग', तीव्रतर 'ग', तीव्रतम 'ग' अथवा तीव्र 'रे' के बाद तीव्रतर 'रे' इत्यादि। वर्तमान में ऋषभ, गांधार, धैवत, निषाद स्वर, शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल होते हैं। अहोबल के यही चार स्वर शुद्ध अवस्था से एक श्रुति नीचे होने पर कोमल और यही चारों स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से दो श्रुति नीचे होने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। जैसे सातवीं पर अहोबल का शुद्ध–ऋषभ, छठी पर कोमल–ऋषभ और पाँचवीं पर पूर्व–ऋषभ है, नौवीं श्रुति पर शुद्ध–गांधार, आठवीं पर कोमल–गांधार और सातवीं पर पूर्व–गांधार है। इसी प्रकार धैवत और निषाद भी एक–एक श्रुति घटने पर कोमल और दो–दो श्रुति घटने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। अतः चार कोमल और चार ही पूर्व विकृत कुल आठ विकृत–स्वर अपने शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर बनते थे। इस प्रकार अहोबल ने 14 तीव्र और 8 कोमल मिलाकर 22 विकृत–स्वर कहे हैं और उन्होंने इनमें सात शुद्ध स्वरों को मिला कर कुल 29 स्वरों का उल्लेख संगीत–पारिजात में किया। लोचन तथा अहोबल के विभिन्न स्वरों को 22 श्रुतियों पर स्थापित करके समझाया जाता है :–

श्रुति.सं.	लोचन के स्वर	अहोबल के स्वर
1	तीव्र 'नि'	
2	तीव्रतर 'नि'	
3	तीव्रतम 'नि'	
4	'सा'	'सा'
5		पूर्व 'रे'
6		कोमल 'रे'
7	तीव्र 'रे'	पूर्व 'ग'
8	तीव्रतर 'रे'	कोमल 'ग'
9	'ग'	'ग'
10	तीव्र 'ग'	
11	तीव्रतर 'ग'	
12	तीव्रतम 'ग'	
13	अति तीव्रतम 'ग'	'म'
14	तीव्र 'म'	
15	तीव्रतर 'म'	
16	तीव्रतम 'म'	
17		'प'
18		पूर्व 'ध'
19		कोमल 'ध'
20	'ध'	पूर्व 'नि'
21	तीव्र 'ध'	कोमल 'नि'
22	तीव्रतर 'ध'	'नि'

अहोबल के रिक्त स्थान, लोचन के स्वर के समान हैं।

मध्यकाल के अन्य ग्रन्थकारों ने भी अपने स्वर इसी प्रकार बाईस श्रुतियों पर स्थापित किए थे। केवल लोचन और अहोबल के स्वरों से ही हम मध्यकालीन श्रुति–स्वर–विभाजन को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इसी काल में दक्षिण भारतीय संगीत के विद्वानों ने विभिन्न स्वर बाईस श्रुतियों पर स्थापित किए हैं।

पं. व्यंकटमुखी ने स्वर्ण और उससे बने आभूषणों में जो अन्तर है, वही श्रुति और स्वर में कहा है। प्राचीन ग्रन्थकार भरतादि के अनुसार व्यंकटमुखी ने बाइस श्रुतियाँ स्वीकार की हैं। बाईस श्रुतियों में स्वरों का विभाजन करते हुए कहा है कि षड्ज से तीसरी श्रुति पर शुद्ध–ऋषभ, शुद्ध–ऋषभ से दूसरी श्रुति पर शुद्ध–गांधार, शुद्ध–गांधार से मध्यम की चार श्रुतियाँ हैं, जिनमें से प्रथम पर साधारण–गांधार, साधारण–गांधार से दूसरी श्रुति पर अन्तर–गांधार और अन्तर–गांधार से एक श्रुति पर शुद्ध–मध्यम कहा है। शुद्ध–मध्यम से चार श्रुति का पंचम विद्वानों ने माना है, जिनमें से तीसरी श्रुति पर वराली–मध्यम, वराली–मध्यम से एक श्रुति पर पंचम, पंचम से तीसरी श्रुति पर शुद्ध–धैवत, शुद्ध धैवत से दूसरी श्रुति पर शुद्ध–निषाद है। षड्ज चार श्रुति का कहा गया है, जिसमें पहली श्रुति पर कौशिक–निषाद, कौशिक–निषाद से दूसरी श्रुति पर काकली–निषाद और काकली–निषाद से एक श्रुति पर स्वयं षड्ज विद्यमान है।

व्यंकटमुखी ने मुखारी राग के स्वरों को शुद्ध माना है। जिसके स्वर हिन्दुस्तानी संगीत के अनुसार सा रे॒ रे म प ध॒ ध सां होता है। रामामात्य और सोमनाथ जो कि चतुर्दण्डी प्रकाशिका के पूर्व के ग्रन्थकार हैं, का नाम लिए बिना चतुर्दण्डी में कहा गया है कि कुछ लोग सात विकृत स्वर मानते हैं पर चतुर्दण्डी प्रकाशिका में कुल पांच ही विकृत स्वर माने गए हैं। जिनके नाम हैं– (1) साधारण–गांधार (2) अन्तर–गांधार (3) वराली–मध्यम (4) कैशिक–निषाद (5) काकली–निषाद।

शुद्ध–गांधार जब नौवीं श्रुति से एक श्रुति ऊँचा होकर दसवीं श्रुति पर जाता है तो साधारण–गांधार हो जाता है और वही दो श्रुति और ऊँचा होकर बारहवीं श्रुति पर अन्तर–गांधार कहलाता है, गांधार के ये दो विकृत–रूप हुए। मध्यम का एक विकृत–रूप है जो कि पंचम की तीसरी श्रुति पर तथा शुद्ध–मध्यम से तीन श्रुति ऊँचा है एवं आरम्भ से सोलहवीं श्रुति पर है, इसे इन्होंने एक नया नाम वराली–मध्यम दिया। इसी श्रुति पर रामामात्य ने 'च्युत–पंचम–मध्यम' व सोमनाथ ने 'मृदु–पंचम' कहा है। शुद्ध–निषाद जो कि बाईसवीं श्रुति पर है, उससे आगे प्रथम श्रुति पर वह कैशिक–निषाद और तीसरी श्रुति पर काकली–निषाद कहलाता है।

पं. श्रीनिवास ने भी पं. अहोबल के ही अनुसार वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना करके स्वरों को श्रव्य के साथ–साथ दृश्य भी बना दिया, जिससे स्वरों की स्थिति में कोई संशय नहीं रहा। प्राचीन संगीत इसीलिए आज प्रचार में नहीं है क्योंकि उस समय के स्वर विश्वस्त से ज्ञात नहीं हैं। शुद्ध और विकृत कुल बारह स्वर ही हैं इस पर बल दिया गया है। एक अन्य मत के अनुसार 22 के स्थान पर 24 श्रुतियों का भी उल्लेख किया गया है। जिसमें सा, रे, म, प, ध की चार–चार और ग, नि की दो–दो श्रुतियाँ बताई गई हैं।

एक सप्तक के कुल बारह ही शुद्ध–विकृत स्वर माने हैं। जबकि अन्य समकालीन ग्रन्थों में विकृत स्वरों की संख्या अलग–अलग है। पं. श्रीनिवास ने वीणा पर स्वरों की स्थापना करके स्वर सम्बन्धी अनिश्चितता को सदा के लिए समाप्त कर दिया। जब बारह ही स्वर हैं तो सबके दो–दो भाग करके क्यों न 24 श्रुतियाँ मान ली जाएँ। 22 श्रुतियों का ही उपयोग है ये भी इस ग्रन्थ में स्पष्ट है। यद्यपि 24 श्रुतियाँ पं. श्रीनिवास ने अन्य मत से दी हैं।

श्रुतियों के विषय में प्राचीन सारणा–चतुष्टयी द्वारा श्रुतियों की संख्या और जैसा उनकी समझ में आया उनकी माप आदि का वर्णन किया है। भरत व शारंगदेव ने माप के विषय में श्रुतियों को समान असमान कुछ नहीं कहा। भातखण्डे जी के विचार से प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ समान थी और मध्यकालीन ग्रन्थकारों की असमान। आगे चलकर पण्डित ओमकार नाथ ठाकुर, आचार्य बृहस्पति आदि ने प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियों को असमान सिद्ध किया, यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकरों की श्रुतियों के माप के सम्बन्ध में अब भी मतभेद हैं पर चूँकि भातखण्डे जी की विचार धारा का प्रचार अधिक हुआ अतः इन्हीं का मत अनेक नवीन शोधों के उपरान्त भी प्रचार में है।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों में सबसे प्रमुख अन्तर यह था कि मध्यकालीन ग्रन्थकार प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह अपनी बाईस श्रुतियों को समान नहीं मानते थे। मध्यकाल के सारे ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को असमान मानते थे। इस कारण उन्होंने अपने स्वरों की स्थापना श्रुतियों के माध्यम से न करके वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाइयों से की है। वीणा के तार पर मध्यकालीन स्वरों की स्थापना आगे दी जाएगी।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों में एक समान विशेषता यह थी कि वे लोग अपने सात शुद्ध स्वरों को आधुनिक काफी राग के स्वरों के समान मानते थे अर्थात उनके शुद्ध स्वरों में निषाद स्वर कोमल लगते थे।

3.6 आधुनिक काल में श्रुति और स्वर

आधुनिक काल उन्नीसवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इस समय लिखे गए ग्रन्थों में पं. भातखण्डे के दो ग्रन्थ "अभिनव राग मंजरी" तथा "संगीत मालिका" प्रमुख हैं। पं. भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों की स्थापना बाईस श्रुतियों पर प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह "चतुश्चतुश्चतुश्चैव" वाले प्रसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार की है। परन्तु उन्होंने अपने शुद्ध स्वरों को प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह उनकी अन्तिम श्रुति पर न रखकर उनको प्रथम श्रुति पर स्थापित किया है। कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वर को उसकी अन्तिम श्रुति पर रखते थे, पं.भातखण्डे ने अपने शुद्ध स्वर को उसकी पहली श्रुति रखा है। इस प्रकार पं. भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों को नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित किया है– सा–पहली श्रुति पर, रे–पाँचवीं श्रुति पर, ग–आठवीं श्रुति पर, म–दसवीं श्रुति पर, प–चौदहवीं श्रुति पर, ध–अठारहवीं श्रुति पर और नि–इक्कसवीं श्रुति पर।

पं. भातखण्डे ने 7 शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त 5 विकृत स्वर मानें हैं और इस प्रकार कुल मिलाकर एक सप्तक में बारह स्वर माने हैं। यही बारह स्वर आज हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रयोग किए जाते हैं। नीचे पं. भातखण्डे के स्वरों को बाईस श्रुतियों पर स्थापित किया गया है। 22 श्रुतियों में स्वरों की स्थापना को लेकर एक नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन षड्ज–ग्राम की श्रुतियों की व्यवस्था को बिना परिवर्तित किए भातखण्डे जी ने स्वर की अन्तिम श्रुति के स्थान पर स्वरों को प्रथम पर स्थापित करके बिलावल को ही प्राचीन आधार दिया।

स्वर – शुद्ध स्वर तो प्राचीन काल से आज तक पूरी दुनिया में सात ही माने जाते हैं। विकृत स्वरों को लेकर अनेक मत हैं, जैसे भरत ने दो, शारंगदेव ने बारह, अहोबल ने बाईस, लोचन ने दस, रामामात्य ने सात और व्यंकटमुखी ने केवल पाँच विकृत–स्वर माने। भातखण्डे जी पर व्यंकटमुखी का प्रभाव अनेक बिन्दुओं में दृष्टिगोचर होता है। अतः उन्होने लक्ष्य–संगीत में सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वर मिलाकर कुल बारह स्वरों को आधार प्रदान किया।

श्रुतियों में स्वरों की व्यवस्था के विषय में प्राचीन मत का उल्लेख करते हुए उसके विपरीत क्रम की चर्चा की गई है। प्राचीन क्रम में चौथी, सातवीं, नौवीं, तेरहवीं, सत्रहवी, बीसवीं और बाईसवीं श्रुतियों पर षड्ज, ऋषभ आदि स्वर स्थापित किए गए हैं लेकिन वर्तमान में हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में स्वरों को विपरीत–क्रम से संस्थापित करने का उल्लेख है। जैसे षड्ज की चार श्रुतियाँ है तो पहली श्रुति पर षड्ज, पाँचवीं पर ऋषभ(ऋषभ की तीन श्रुतियों में से प्रथम पर, परन्तु आरम्भ से गिनने पर पाँचवीं), आठवीं पर गांधार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत, इक्कीसवीं पर निषाद स्वर स्थापित किए गए हैं।

विकृत–स्वर – स्वर जब अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा या नीचा होता है तो उसे विकृत कहा गया है। मध्यम अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा हो तो उसे तीव्र–विकृत तथा ऋषभ, गांधार, धैवत तथा निषाद अपनी शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल–विकृत कहे गए हैं। इस प्रकार सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों को मिलाकर कुल बारह स्वरों का उल्लेख है।

वीणा पर स्वरों की स्थापना – वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना का विचार पं. भातखण्डे ने दिया है। ग्रन्थकार का मत है कि स्वर कान के साथ–साथ आँख का भी विषय हो जाए जिससे अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टीकरण हो सकेगा, इसलिए वीणा पर स्वरों की स्थापना की गई है।

वीणा पर स्वरों की स्थापना करते समय पं. भातखण्डे का कथन है कि 'पूर्व' मेरू (Bridge) और 'अन्त्य' मेरू के ठीक मध्य में तार–षड्ज, तार–षड्ज और पूर्व मेरू के मध्य अतितार–षड्ज, अन्तय मेरू और तार–षड्ज के मध्य शुद्ध–मध्यम, अन्तय मेरू और तार–षड्ज के तीन भाग करके अन्त्य मेरू की ओर से दूसरे भाग पर पंचम, अन्त्य मेरू और पंचम के तीन भाग करके अन्त्य मेरू की ओर से प्रथम भाग पर ऋषभ, पंचम और तार–षड्ज के मध्य धैवत है जिसे ऋषभ से षड्ज–पंचम भाव से संवादी होना आवश्यक है। अन्त्य मेरू और धैवत के मध्य तीव्र–गांधार से षड्ज–पंचम भाव से निषाद प्राप्त करें।

उन्होंने विकृत स्वरों के लिए इस प्रकार कहा है कि मेरू और ऋषभ के मध्य कोमल–ऋषभ, मेरू और पंचम के मध्य कोमल–गांधार, मध्यम और पंचम के बीच तीव्र–मध्यम, कोमल–ऋषभ से षड्ज–पंचम भाव से संवाद करता हुआ कोमल–धैवत, पंचम और तार–षड्ज के तीन भाग करके पंचम की ओर से दूसरे भाग पर कोमल–निषाद कहा है।

आधुनिक ग्रन्थकार अपनी 22 श्रुतियाँ मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह असमान मानते हैं। भातखण्डे जी ने भी स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर विभिन्न नापों से की है। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों की वीणा पर स्वरों की स्थापना मध्यकालीन ग्रन्थकारों की स्थापना से कुछ भिन्न है। आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को बिलावल थाट के समान मानते हैं अर्थात उनके शुद्ध सप्तक में गांधार तथा निषाद स्वर प्राचीन व मध्यकालीन स्वरों की तरह कोमल नहीं हैं।

श्रुति.सं.	श्रुति का नाम	आधुनिक शुद्ध तथा विकृत बारह स्वरों की स्थापना
1	तीव्रा	(1) षड्ज
2	कुमुद्वती	
3	मन्द्रा	(2) कोमल ऋषभ
4	छंदोवती	
5	दयावती	
6	रंजनी	(3) शुद्ध ऋषभ
7	रक्तिका	
8	रौद्री	(4) कोमल गांधार
9	क्रोधा	(5) शुद्ध गांधार
10	वज्रिका	
11	प्रसारिणी	(6) शुद्ध मध्यम
12	प्रीति	
13	मार्जनी	(7) तीव्र मध्यम
14	क्षिति	
15	रक्ता	
16	संदीपनी	(8) पंचम
17	आलापिनी	
18	मदन्ती	(9) कोमल धैवत
19	रोहिणी	(10) शुद्ध धैवत
20	रम्या	
21	ऊग्रा	(11) कोमल निषाद
22	क्षोभिणी	(12) शुद्ध निषाद

आधुनिक ग्रन्थकारों में एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये लोग पाश्चात्य संगीतज्ञों की तरह अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों को विभिन्न आन्दोलन संख्याओं के आधार पर स्थापित करते हैं, जबकि प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों को यह साधन मालूम नहीं था। स्वर तथा आन्दोलन संख्या के विषय को आगे स्पष्ट किया जाएगा।

संक्षेप में ऊपर दिए गए तीनों कालों के श्रुति–स्वर विभाजन के अन्तर को हम इस प्रकार समझ सकते हैं:–

(1) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते थे। अर्थात् सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को उनकी पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं अर्थात् सा–पहली पर, रे–पाँचवीं पर, ग–आठवीं पर, म–दसवीं पर, प–चौदहवीं पर, ध–अठारहवीं पर और नि–इक्कीसवीं श्रुति पर।

(2) प्राचीन ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी आपस की दो श्रुतियों का अन्तर एक प्रमाण बन गया था और इस प्रकार वह किसी भी स्वर को श्रुति द्वारा नाप लिया करते थे। परन्तु मध्यकालीन तथा आधुनिक ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान नहीं मानते। उन्होंने स्वरों की स्थापना श्रुतियों के नाप से न करके वीणा के तार की लम्बाई पर विभिन्न नापों से की है।

(3) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वर सप्तक को आधुनिक काफी थाट के समान मानते थे अर्थात् उनके शुद्ध स्वर में गांधार तथा निषाद स्वर कोमल लगते थे। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकार बिलावल थाट को अपना शुद्ध स्वर सप्तक मानते हैं। उनके सात शुद्ध स्वरों में गांधार तथा निषाद स्वर प्राचीन तथा मध्यकालीन स्वरों की तरह कोमल नहीं है।

(4) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों को स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालने का ज्ञान नहीं था। परन्तु आधुनिक काल के ग्रन्थकारों को पाश्चात्य संगीतज्ञों की तरह स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालने का ज्ञान था।

प्राचीन ग्रन्थकारों की समान श्रुतियाँ (सारणा चतुष्टयी) – जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी पास–पास की दो श्रुतियों का अन्तर एक प्रमाण अथवा निश्चित नाप था जो सप्तक की प्रत्येक पास की दो श्रुतियों के बीच में होता था। अर्थात् उनकी पहली और दूसरी श्रुति में जो अन्तर था, वही तीसरी, चौथी और पांचवीं आदि श्रुतियों में था। प्राचीन काल के दो ग्रन्थ प्रमुख हैं–एक भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' तथा दूसरा शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर'। भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में श्रुति चर्चा करते हुए 'सारणा चतुष्टयी' में एक प्रयोग लिखा है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे। इस प्रयोग में 'प्रमाण श्रुति' का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

3.7 दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय

दक्षिण भारतीय संगीत का उद्भव एवं विकास – नाट्यशास्त्र से लेकर संगीतराज ग्रन्थों के अध्ययन से यही पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत में एक ही संगीत पद्धति प्रचलित थी। नाट्यशास्त्र में किसी भी विशेष स्थान से सम्बन्धित सांगीतिक संस्कृति का वर्णन नहीं है, जिसे दक्षिण भारतीय संगीत या कर्नाटक संगीत माना जाए। कुछ विद्वानों के अनुसार संगीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समय तक दक्षिण भारतीय संगीत के पृथक रूप का प्रारम्भ हो गया था। कल्लिनाथ द्वारा विभिन्न संज्ञाओं जैसे पंचश्रुतिक, षडश्रुतिक, जन्य–जनक मेल आदि का प्रयोग किया जाना उस समय में दक्षिण भारतीय संगीत के अस्तित्व को दर्शाता है। संगीतरत्नाकर के काल में

दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के बीज अंकुरित हो चुके थे। संगीत की दो प्रणालियाँ प्रचलित है, उनमें से एक को कर्नाटकी और दूसरी को हिन्दुस्तानी प्रणाली कहा जाता है। मद्रास के आस–पास के क्षेत्र में जो संगीत प्रणाली प्रसिद्ध है उसको कर्नाटकी कहा जाता है तथा शेष भारत में सर्वत्र हिन्दुस्तानी प्रणाली प्रचलित है।''

प्राचीन काल से लेकर 1300 ई0 तक पूरे भारत में एक ही शास्त्रीय संगीत का प्रचलन था। मुसलमानों के आने के पश्चात भारतीय संस्कृति में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा। भारत का उत्तरी क्षेत्र मुस्लिम(फारस, ईरान इत्यादि) संस्कृति, संगीत, कला आदि से अत्यधिक प्रभावित हुआ। जिसका परिणाम यह हुआ कि जो संगीत ईश्वर की आराधना के लिए किया जाता है वह शासकों को खुश करने एवं भौतिक साधनों की प्राप्ति के साधन के रूप में प्रयोग होने लगा। दक्षिणी क्षेत्र मुसलमानों के आक्रमण से बचा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ का संगीत बाह्य संस्कृति से अप्रभावित रहा। इसके परिणामस्वरूप ही भारतीय संगीत में दो अलग–अलग शैली उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत पद्धति का निर्माण हुआ।''

दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर – दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध तथा विकृत स्वर मिलाकर कुल 12 स्वर हैं। 'सा' और 'प' अचल स्वर हैं तथा शेष चल स्वर कहलाते हैं। चल स्वर जब अपने स्थान से ऊपर या नीचे हों तो उन्हें क्रमशः तीव्र या शुद्व स्वर कहते हैं। दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत के समान ही है। दक्षिण भारतीय संगीत में विकृत स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत से अलग है तथा इनके नामों में भी भिन्नता है। दक्षिण भारतीय संगीत में स्वर की शुद्ध स्थिति पहले मानी जाती है तथा शुद्व स्वर के बाद विकृत स्वर आते हैं, जो प्राचीन भारतीय संगीत परम्परा के समान है। दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत के स्वरों की स्थिति निम्न तालिका से समझी जा सकती है।

उत्तर भारतीय स्वर		दक्षिण भारतीय स्वर
1. षड्ज	–	षड्ज
2. कोमल ऋषभ	–	शुद्ध ऋषभ
3. शुद्ध ऋषभ	–	चतुःश्रुति ऋषभ या शुद्ध गान्धार
4. कोमल गान्धार	–	षट्श्रुति ऋषभ या साधारण गान्धार
5. शुद्ध गान्धार	–	अन्तर गान्धार
6. शुद्ध मध्यम	–	शुद्ध मध्यम
7. तीव्र मध्यम	–	प्रति मध्यम
8. पंचम	–	पंचम
9. कोमल धैवत	–	शुद्ध धैवत
10.शुद्ध धैवत	–	चतुःश्रुति धैवत या शुद्ध निषाद
11.कोमल निषाद	–	षट्श्रुति धैवत या कैशिक निषाद
12.शुद्ध निषाद	–	काकलि निषाद

दक्षिण भारतीय संगीत के थाट – उत्तर भारतीय संगीत में जिसे 'थाट' कहते हैं, दक्षिण भारतीय संगीत में उसे 'मेल' कहा जाता है। मेल के आधार पर राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में कुल 72 मेल माने गए हैं। दक्षिण भारतीय पद्धति में एक ही मेल(थाट) में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग एक साथ किया जा सकता है, परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में यह प्रयोग मान्य नहीं है। उत्तर भारतीय संगीत के दस थाटों के समकक्ष दक्षिण भारतीय संगीत के मेल निम्न तालिका में वर्णित हैं :–

हिन्दुस्तानी थाट		मेलकर्ता
1. भैरवी	–	हनुमत तोड़ी
2. भैरव	–	मायामालवगौड
3. आसावरी	–	नटभैरवी

4. काफी	–	खरहरपिया
5. खमाज	–	हरिकाम्भोजी
6. बिलावल	–	धीरशंकराभरणम्
7. तोड़ी	–	शुभपंतुवराली
8. पूर्वी	–	कामवर्धिनी
9. मारवा	–	गमनप्रिया
10.कल्याण	–	मेचकल्याणी

दक्षिण भारतीय संगीत की रचनाएं :–

1. पदम् – दक्षिण भारतीय पद्धति में पदम् का विशेष स्थान है। पदम् में मुख्य रूप से तीन पंक्तियाँ होती है–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम्। पदम् के रचियताओं में पुरन्दरदास, कनकदास, जगन्नदास, तथा मुट्टु ताण्डव का नाम प्रमुख है। 17वीं सदी के क्षेत्रज्ञ के पदम् अत्यधिक प्रचलित हुए। पदम् के अन्य रचनाकारों में तंजौर के नरेश शाहजी(मराठी व तेलगु भाषा में), स्वाती तिरूनल महाराज(संस्कृत, तेलगू व मलयालम भाषा में) व सुब्बाराय अय्यर का नाम आता है।

2. कीर्तन/कीर्तनम् – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की महत्वपूर्ण रचनाओं में कीर्तन का नाम आता है। कीर्तन भगवान की उपासना सम्बन्धित रचना है जो राग व ताल मे निबद्व होती है। इसके तीन अंग माने गए हैं–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् जो प्राचीन प्रबन्ध के अवयव क्रमशः ध्रुव, अंतरा व आभोग के समान है। कुछ कीर्तन अनुपल्लवी रहित भी होते हैं। कीर्तन में एक से अधिक चरण भी हो सकते हैं। 14वीं–15वीं शताब्दी के तालपाकम्, कीर्तन के प्रथम रचनाकार थे। अन्य रचियताओं में श्री त्यागराज, मुतुस्वामी दीक्षितार, श्यामाशास्त्री, पुरून्दरदास, स्वाति तिरूनाल आदि का नाम आता है।

3. कृति – दक्षिण भारतीय संगीत की रचना कृति, कीर्तन का विकसित रूप मानी जाती है। कलात्मक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी उत्पत्ति 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी गई है। कृति में मुख्यतः श्रृंगार, करूण व भक्ति रस की प्रधानता होती है। इसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता होती है। यह प्रचलित व अप्रचलित दोनों प्रकार के रागों में निबद्ध मिलती है तथा गाई जाती है। कृति में स्वर का प्रमुख स्थान है तथा साहित्य गौण रहता है। इसके तीनों अंगों–पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् का प्रयोग क्रम से किया जाता है।

4. वर्णम् – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की रचनाओं में वर्णम् का प्रमुख स्थान है। कर्नाटक संगीत में राग स्वरूप निर्धारण में इसका ज्ञान आवश्यक है। कर्नाटक संगीत में गायक व वादक के लिए वर्णम् की शिक्षा अनिवार्य मानी गई है। राग स्वरूप के निर्धारण व स्पष्टीकरण हेतु हर राग को स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण में रचने के कारण इसको वर्णम् नाम दिया गया। सभागान और वादन में सर्वप्रथम वर्णम् ही गाया या बजाया जाता है। वर्णम् के दो भाग हैं – 1. पूर्वांग 2. उत्तरांग।

5. जावली – यह दक्षिण के जावल शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है श्रृंगारमय गीत। यह आधुनिक गीत का प्रकार है। जावल मुख्यतः श्रृंगार रस प्रधान होती है। इसका विषय मुख्यतः नायक व नायिका के प्रेम सम्बन्धों पर आधारित रहता है। इसका इतिहास 100–200 वर्ष पूर्व से मिलता है। यह उत्तर भारत की गायन शैली ठुमरी से मिलती जुंलती है। जावली में भी अन्य रचनाओं की भाँति पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् अंग होते हैं। यह मुख्यतः परज, खमाज, काफी, विहाग, झिंझोटी आदि रागों में गाई जाती है तथा इसके साथ प्रायः आदि, रूपक, चापु आदि तालों का प्रयोग किया जाता है। इसके रचनाकरों में स्वाति तिरूनाल, पट्टणम् सुब्रह्मणयम, श्रीनिवास अय्यंगार आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

6. तिल्लाना – दक्षिण भारतीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियों में तिल्लाना का अपना अलग स्थान है। यह उत्तर भारतीय संगीत के तराना के समकक्ष है। भारतीय संगीत पद्धति के तराना नामक गीत का स्वरूप दक्षिणात्य संगीत का तिल्लाना है। इसका प्रयोग दक्षिण भारतीय संगीत में नृत्य के साथ भी किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से तोम, तनन, न, दे, धिन् जैसे निरर्थक अक्षर, सोलकट्टु अर्थात् पाटुक्षर(तरिकिट) और स्वर तथा चरणम् में पद रहता है।

7. रागमालिका – ऐसी रचना जिसमें भिन्न–भिन्न प्रकृति के रागों का मिश्रण हो उसे रागमालिका कहते हैं। यह एक लम्बी रचना है जिसे भिन्न–भिन्न रागों में अलग–अलग खण्ड़ों में गाया जाता है। इसमें एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि समान स्वरों के रागों को पास ना रखा जाए। रागमालिका में प्रयुक्त ताल शुरू से लेकर अन्त तक एक ही रहता है। इसके रचयिताओं को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह किन रागों का चुनाव करें व उनका क्रम क्या रखा जाए। इसके भी तीन अंग पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् होते हैं।

दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के प्रमुख वाद्य – प्राचीनकाल में उत्तर व दक्षिण संगीत पद्धतियों में वाद्य समान ही थे किन्तु बाद में अलग वातावरण, विभिन्न गायन शैलियों व वाद्यों के विकास के साथ–साथ इनमें भी परिवर्तन होने लगे, इस कारण कुछ नए वाद्य भी अस्तित्व में आए। आज दोनों पद्धतियों में वाद्यों, उनकी बनावट व उनकी वादन शैलियों में काफी अन्तर आ गया है।

1. बेला वाद्य – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में बेला स्वतन्त्र व संगत वाद्य दोनों के रूप में प्रमुख स्थान रखता है। गायन में इसका विशेष प्रयोग आलाप करते समय व तान आदि क्रियाओं का अनुकरण करने में किया जाता है।

2. दक्षिणात्य वीणा – वीणा का भी दक्षिण भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग स्वतन्त्र वादन व संगत वाद्य दोनों रूप में किया जाता है। प्राचीन काल से ही वीणा का संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिण भारतीय संगीत में अभी भी वीणा अत्यन्त लोकप्रिय व विकसित रूप में प्रचलित है। कर्नाटक पद्धति में इसके लोकप्रिय होने के कारण इसको समय के अनुसार लगातार विकसित किया जाता है।

3. नागस्वरम् या तूर्य – कर्नाटक संगीत के वाद्य में नागस्वरम या तूर्य का अपना स्थान है। देवालयों में, मांगलिक कार्यक्रमों में, उत्सव आदि अवसरों में इसका प्रयोग किया जाता है। यह आच्चा लकड़ी का बना होता है जिसकी लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ होती है। इसमें सात स्वरों के रन्ध्र होते हैं जो चौथाई अंगुल व्यास के बनते हैं। मुख्य नागस्वरम् के अलावा एक अन्य नागस्वरम् का प्रयोग स्वर देने के लिए किया जाता है।

4. मृदंगम् – यह कर्नाटकी संगीत का प्रमुख ताल वाद्य है। मृदंगम् में पूड़ी का चमड़ा उत्तर भारतीय पखावज की अपेक्षा मोटा होता है। उत्तर भारत मृदंग की किनार का चमड़ा एक इंच व्यास का रखा जाता है, जबकि दक्षिण भारतीय मृदंगम् में किनारे का यह चमड़ा स्याही के स्थान को छोड़कर पूड़ी का समस्त स्थान घेरता है। इस तरह मृदंगम् में चाँट और स्याही के भाग दिखाई देते हैं जबकि पखावज में पूड़ी, चाँट, लव तथा स्याही इन तीनों भागों में दिखाई देती है।

दक्षिण भारतीय ताल पद्धति – कर्नाटक या दक्षिण ताल पद्धति में 35 तालों का प्रयोग किया जाता है। कर्नाटक ताल पद्धति में सात मुख्य ताल हैं। संगीत के क्रियात्मक पक्ष में तालों की अपर्याप्यता को देखते हुए इन तालों में व्यवहारित अंगों को दुगुना, चौगुना, पंचगुना, छःगुना और नौगुना करके इन सात तालों से ही पैंतीस तालों का निर्माण किया गया है। दक्षिण ताल पद्धति में अंग का बहुत महत्व है। अंग 6 प्रकार के होते हैं। तालों के स्वरूप को प्रकट करने व ताल लिखने या प्रदर्शित करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। जो काम उत्तर भारतीय ताल पद्धति में विभागों का है वही दक्षिण में अंगों का है। निम्न तालिका से आप अंगों को समझ सकेंगेः–

क्रम	अंग नाम	मात्रा	चिन्ह
1	अणुद्रुत	1	ु
2	द्रुत	2	0
3	लघु	4	।
4	गुरू	8	ऽ या 8
5	प्लुत	12	3 या 8
6	काकपद	16	+

दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की समानताएं :–

1. दोनों पद्धतियों में एक सप्तक के अन्तर्गत 22 श्रुतियां और 12 शुद्व और विकृत स्वर होते हैं। स्वर स्थानों में भी लगभग समानता है।
2. दक्षिण संगीत पद्धति में मेलराग वर्गीकरण प्रचलित है तथा उत्तर भारत में थाट–राग वर्गीकरण। मेल व थाट दोनों शब्दों का मतलब एक ही है। दोनों पद्धतियों में थाट/मेल को जनक तथा राग को जन्य माना गया है। थाट राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 भातखंडे जी को तथा मेल राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है।
3. दोनों पद्धतियों की कुछ तालें भी समान हैं। जैसे उत्तर भारत की चारताल व एकताल, दक्षिण की चतस्त्र जाति की अठ ताल के समकक्ष है।
4. दोनों पद्धतियों में विभाग की प्रथम मात्रा पर ताली देने का प्रावधान है।
5. दोनों पद्धतियों में कुछ राग भी समान हैं। जैसे हंसध्वनि, चारूकेशी, नारायणी, आभोगी, किरवाणी, कलावती आदि। खमाज व विहाग दक्षिण में उत्तर भारत के समान ही गाए जाते हैं। हिंडौल राग उत्तर के मालकौंस के समकक्ष है।
6. दोनों पद्धतियों की कुछ गायन शैलियों में भी समानता पाई जाती है। जैसे तराना–तिल्लाना, ठुमरी–जावलि, ख्याल–वर्णम् आदि।

दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की असमानताएं :–

1. दक्षिण में स्वर के कम्पन पर तथा उत्तर में स्वर की स्थिरता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. दक्षिण में एक ही स्वर को दो नामों से भी जाना जाता है, जैसे चतुःश्रुति ऋषभ, साधारण गांधार, चतुःश्रुति धैवत और कौशिक निषाद को क्रमशः शुद्ध गान्धार, षट्श्रुति ऋषभ, शुद्ध निषाद और षट्श्रुति धैवत जैसे अन्य नामों से भी जाना जाता है। उत्तर में स्वरों के दो नाम नहीं होते।
3. दक्षिण में बन्दिशों में परिवर्तन नहीं किया जाता है। बंदिश की मौलिकता पर विशेष बल दिया जाता है। उत्तर में रचनाओं में इतना बंधन नहीं है। गायक रचना में परिवर्तन कर सकता है।
4. उत्तर में बड़े ख्याल व छोटे ख्याल में रचना(साहित्य) एक से दो पंक्तियों का होता है तथा गायक उसी पर अधिक समय तक राग–विस्तार करता रहता है। दक्षिण की कृतियों में पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् होते हैं तथा इनमें उत्तर की अपेक्षा साहित्य अधिक रहता है।
5. एक मतानुसर कर्नाटक संगीत में विलम्बित लय नहीं होती। रचनाएं प्रायः मध्य व द्रुत लय में होती हैं।
6. उत्तर में 10 थाट माने गए हैं तथा दक्षिण में 72 मेल माने गए हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. श्रुति की परिभाषा देते हुए संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. स्वर एवं श्रुति में क्या अन्तर है? संक्षेप में बताइए।
3. भरत कृत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध स्वरों को बताइए।
4. प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. वैदिक काल में तीन स्वरों का प्रचलन था।
2. कवि लोचन ने राग तरंगिनी में 20 स्वरों का वर्णन किया है।
3. आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को बिलावल थाट समान मानते हैं।
4. पाणिनी के समय तक सात स्वरों का प्रचार नहीं हुआ था।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. प्राचीन समय में सा स्वर की उत्पत्ति _____पक्षी से मानी गई है।
2. पं. शारंगदेव ने बारहवीं श्रुति पर _____स्वर स्थापित किया है।

3. ऋषभ एवं धैवत स्वरों की श्रुति संख्या _____ है।
4. भरत ने सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर–गान्धार एवं _____ विकृत स्वर माने हैं।
5. दक्षिण का ..... थाट भारतीय संगीत के तोड़ी थाट के समकक्ष माना जाता है।

3.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में जान चुके होंगे। प्राचीन काल से स्वरों का अस्तित्व सामने आता है। स्वरों का सम्बन्ध अनेक पशु–पक्षियों एवं देवी–देवताओं से भी जोड़ा गया है। सभी ने श्रुतियों की संख्या 22 मानी है परन्तु उनमें स्वरों की स्थापना में भिन्नता है। विकृत स्वरों की संख्या में भी विद्वानों के मत समान नहीं हैं। प्राचीन विद्वानों ने सप्तक के बराबर 22 भाग कर 22 श्रुतियों में विभाजन करके स्वरों की स्थापना की है परन्तु मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने 22 श्रुतियों को समान न मानते हुए वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाईयों में स्वरों की स्थापना की है। प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी अंतिम श्रुति में स्थान दिया है परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी पहली श्रुति पर स्थापित किया है। विभिन्न कालों के ग्रन्थकारों के माध्यम से स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में उस काल की स्थिति एवं संगीत में प्रयुक्त स्वरों का विषद ज्ञान प्राप्त हो जाता है। आप श्रुति एवं स्वर से संबंधित विभिन्न पहलुओं से परिचित हो चुके होंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट, रचनाओं, वाद्यों एवं ताल पद्धति से भी परिचित हो चुके होंगे।

3.9 शब्दावली

1. द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे–षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।
2. प्रबन्ध – प्राचीनकाल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, रूपक आदि आते थे। प्रबन्ध की चार धातुएँ उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग हैं।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. मयूर
2. अन्तर गान्धार
3. तीन
4. काकली निषाद
5. शुभपंतुवराली

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर,(1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. राजन, डा0 रेणु,(2010), भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सर्राफ, डॉ0 रमा,(2004), *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।

4. भातखण्डे, विष्णु नारायण,(1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त,(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति,(1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण,(1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वर एवं श्रुति का परस्पर सम्बन्ध बताते हुए विस्तार से प्राचीन कालीन विद्वानों के अनुसार इनकी व्याख्या कीजिए।
2. मध्यकाल एवं आधुनिक काल के विद्वानों के अनुसार श्रुति एवं स्वर की व्याख्या करते हुए परस्पर विश्लेषण कीजिए।
3. दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट एवं रचनाओं के विषय में बताइए।

इकाई 4 – मार्ग संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविरभाव, तिरोभाव, काकु व तान

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मार्गी और देशी संगीत
4.4 नायक व गायक
4.5 वाग्गेयकार
4.6 पण्डित
4.7 कलावन्त
4.8 गीत
4.9 गन्धर्व और गान
4.10 तिरोभाव–अविर्भाव
4.11 काकु
4.12 तान
4.13 सारांश
4.14 शब्दावली
4.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.18 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के प्रथम खण्ड की चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय संगीत के इतिहास, थाट पद्धति, श्रुति एवं स्वर के बारे में जान चुके होंगे।

इस इकाई में परम्परागत भारतीय संगीत के सैद्धान्तिक पक्ष को लेते हुए यह विभिन्न संगीतज्ञ वर्ग एवं शैलियों जैसे मार्गी संगीत, देशी संगीत, नायक, गायक, वाग्गेयकार, पण्डित, कलावन्त, गीत, गन्धर्व, गान, अविर्भाव, तिरोभाव, काकु और तान के बारे में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मार्गी संगीत, देशी संगीत, गन्धर्व, गान के साथ–साथ संगीतज्ञ वर्ग वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त, गायक आदि के विषय में भली भांति जान सकेंगे। मार्गी संगीत एवं देशी संगीत का प्रचलन किस समय था तथा इनका वर्तमान स्वरूप कैसा है, आप बता सकेंगे। इस इकाई में रागों के गायन–वादन में व्याप्त आविर्भाव–तिरोभाव, काकु एवं तान जैसे सौन्दर्यात्मक तत्वों के स्वरूप एवं प्रयोग को भी जान सकेंगे। प्राचीन समय में मोक्ष प्राप्ति हेतु मार्गी संगीत का प्रचलन बहुत अधिक था परन्तु धीरे–धीरे देशी संगीत ने जो मनोरंजन का साधन मात्र है, जगह ले ली है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि प्राचीन काल से अभी तक गीत विधाओं का स्वरूप क्या रहा है।
- समझा सकेंगे कि मार्गी अथवा गन्धर्व तथा देशी अथवा गान आदि संगीत की दोनों धाराओं का समान्तर प्रचलन कैसे आपस में एक दूसरे से प्रभावित रहा है।
- समझा सकेंगे कि राग के सौन्दर्यात्मक तत्वों आविर्भाव, तिरोभाव, तान आदि की विशेषताओं एवं रचना विधि के क्या नियम एवं मान्यताएं हैं।
- बता सकेंगे कि नायक, गायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त आदि को समाज में किस श्रेणी में रखा जाता है तथा इनकी विशेषताओं एवं गुणों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है।

• बता सकेंगे कि आध्यात्मिक एवं लौकिक संगीत विधाओं का प्रचलन समयानुसार परिवर्तित होता आया है।

4.3 मार्गी और देशी संगीत

संगीत और धर्म का आरंभ से ही अटूट संबंध रहा है। संगीत की वह धारा, जिसका प्रयोग प्रभु की भक्ति के लिए किया गया, उसको मार्गी संगीत का नाम दिया गया। मार्गी से भाव मार्ग अर्थात रास्ता, परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता। दूसरी तरफ वह संगीत जिसका प्रयोग लौकिक सम्मेलनों पर किया जाता था और उसका उद्देश्य केवल लोकरंजनकारी ही था, उसको देशी संगीत कहा गया।

"मार्गशीयभेदेन द्विधा संगीतमुच्यते।
वेदा मार्गाख्य संगीतं भरतायाब्रवीत्स्वयम्।
गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्गदेशीविभागेन संगीतं द्विविधं मतम्।"

मार्गी संगीत के नियम बहुत कठोर थे और उनमें अपनी इच्छा के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। जबकि देशी संगीत समय के परिवर्तन के साथ ही साथ लोकरूचि के अनुसार भी बदलता रहता था। संगीत की ये दोनों धाराएं समानान्तर रूप से प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही और एक–दूसरे को प्रभावित करती रही। इस प्रकार मार्गी एवं देशी संगीत का आपस में आदान–प्रदान आरंभ से चलता रहा। *डॉ. पराजंपे लिखते हैं–"मार्गी संगीत की तुलना यदि गंगा नदी के धीर, गंभीर एवं प्रवाह से की जाए तो देशी संगीत की तुलना पहाड़ी देशों में उन्मुक्त रूप से बहते हुए झरनों से की जा सकती है।"*

जिस संगीत का प्रयोग गन्धर्व लोग करते थे, उसको गन्धर्व संगीत कहा जाता था। इसके गायन के साथ वाद्यों की संगति की जाती थी। इसलिए इस काल में गायन तथा वादन इन दोनों का समावेश होता था। भरत काल में गन्धर्व एक शास्त्र का रूप ले चुका था और इसमें स्वर, ताल और पद, इन तीनों अंगों का होना जरूरी था। गन्धर्व संगीत शब्द प्रधान था, मार्गी संगीत गन्धर्व का ही रूप था।

आधुनिक काल में संगीत की किसी भी धारा के लिए मार्गी और देशी शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। मार्गी के स्थान पर शास्त्रीय संगीत शब्द तथा देशी के स्थान पर लोक शद का प्रयोग किया जाता है। संगीत को तब ही उत्तम समझा जाता है, जब उसमें निम्न प्रकार के पक्ष मौजूद हों–

1. भाव पक्ष 2. कला पक्ष

मार्गी संगीत – मार्गी संगीत वह संगीत था जिसका सम्बन्ध मोक्ष–प्राप्ति के लिए ही किया जाता था। मार्गी का शाब्दिक अर्थ है–मार्ग अर्थात् रास्ता और रास्ते से भाव है परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता। ऋषियों–मुनियों, पीर–पैगम्बरों और गुरूओं ने यह अनुभव किया कि संगीत में एकाग्र करने की क्षमता है। सत्तव गुणी संगीत मनुष्य के मन को अपने में लीन करके परमात्मा की भक्ति में लीन कर सकता है। तब उन्होंने इस संगीत का सहारा लिया, जिसको मार्गी संगीत का नाम दिया गया। मार्गी संगीत का मुख्य उद्देश्य अध्यात्मवाद ही था। उद्देश्य–पूर्ति के बाद उन्होंने इस संगीत को कठोर नियमों में जकड़ दिया। इस संगीत में लोगों की रूचि के अनुसार कोई भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। प्राचीन काल से संगीत भारतीय संस्कृति एवं जनजीवन का अभिन्न अंग रहा है।

मार्गी संगीत का वास्तवितक रूप क्या था, इसके बारे में स्पष्टीकरण देना कठिन है। आधुनिक युग में यह भी कहा जाता है कि मार्गी संगीत का सम्बन्ध सामवेद की ऋचाओं से माना जाता था अथवा उस संगीत को मार्गी संगीत कहा जाता है जिसका सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था। ईश्वर संबंधी चिन्तन के लिए, मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए, नैतिक उत्थान के लिए अथवा 'रसो वै सः' कहकर रस के चरमोतकृष्ट स्वरूप का आस्वादन करने के लिए आध्यात्मवादियों द्वारा जहाँ साधना या योगसाधना को महत्व दिया गया और जीवन की भौतिक

सुन्दरताओं से दूर रहकर एकाग्र चिंतन करते हुए समाधि की अवस्था को महत्व दिया गया। वहीं दूसरे मार्ग में जीवन को चार विभागों में विभाजित करके आयु के अनुसार जीवन को सुन्दर व सुखद रूप में व्यतीत करते हुए भी उसमें लिप्त न होकर अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्न को महत्व दिया गया। एकान्तिक साधना में भी और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी, की जाने वाली साधना में सौन्दर्य का विशेष महत्व होता है। सांसारिक स्तर पर सौन्दर्य शारीरिक व मानसिक सुख का कारण बन कर आनन्ददायक प्रतीत होता है जबकि यही सौन्दर्य आध्यात्मिक स्तर पर मानव के नैतिक उत्थान का कारण बनकर जिस असीम आनन्द में परिवर्तित होता है उसे हम दिव्यानुभूति कह सकते हैं। यह आध्यात्मिक अनुभूति ही परम सत्य की प्राप्ति का कारण बनती है और नादोपासना या योगियों द्वारा की जाने वाली ब्रह्म की उपासना, उस लक्ष्य प्राप्ति का साधन। सम्भवतः इसी रहस्य को जानते हुए विद्वानों ने नाद को ''तस्मान्नादात्मकं जगत्'' कहकर, रस को 'रसो वै सः' कहकर तथा ब्रह्म को ''अहं ब्रह्मास्मि'' कहकर नाद, रस व ब्रह्म और ब्रह्माण्ड की एकाकारता के रूप में साध्य व साधन की अभिन्नता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

वैदिक काल में मार्गी संगीत का रूप – वैदिक काल में साम गान शास्त्रीय संगीत के उद्गम स्रोत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि अपौरूषेय, श्रेयस् की प्राप्ति कराने वाला, भौतिकता से परे ले जाने में सक्षम, साधना के समस्त अंगों को स्वीकार करने वाला, विशिष्ट उद्देश्य से परिपूर्ण एवं विशिष्ट नियमों से अनुशासित होने के कारण जो संगीत मर्यादाबद्ध है वही शास्त्रीय, मार्ग या शिष्ट संगीत है, यदि ऐसा कहा जाए तो सम्भवतः अनुचित न होगा। सामवेद को संगीत का मूल कहा जाता है। साम का गान ऋगवेद की ऋचाओं के आश्रय से किया जाता रहा है। यदि ऋक् को वाणी माना जाए तो साम उसका प्राणभूत है। सामसंहिता में ऋकसंहिता के सभी मन्त्र नहीं हैं। इसमें ऋक् के चुने हुए मन्त्रों का संग्रह है। छान्दोग्योपनिषद के अनुसार साम यानि सा + अम के संवाद से विश्व का संगीत चल रहा है। यदि 'सा' ऋक है तो 'अम' आलाप यानि साम है। यदि 'सा' शब्द है तो 'अम' छंद है। इस प्रकार ऋग्वेद की ऋचाएं सामवेद का आधार कहलाती हैं। अभिप्राय यह है कि सामवेद ने शब्द ऋगवेद से लिया है और स्वर उसका स्वयं का है। अतः साम का अर्थ है ऋचाओं के आधार पर किया गया गान जिसमें मातु या बोल ऋगवेद के हैं और धातु या स्वर साम का है। साम का जो निजी है, स्वयं का है वह स्वर है। इस प्रकार सामवेद अपने गान के पदों को ऋगवेद से लेता है। विशिष्ट नियमों से अनुशासित साम का गान मार्गी संगीत का ही रूप रहा होगा।

सामगान में तीन गायक होते थे जो प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता के नाम से जाने जाते थे। मुख्य गायक उद्गाता होता था, प्रस्तोता और प्रतिहर्ता उसके सहायक होते थे।

1. **प्रस्ताव** – प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता, ये तीनों गायक मिलकर सबसे पहले 'हुं' का स्वर में उच्चारण करते थे। जिस प्रकार आजकल गायक आरम्भ में आकार का उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार उस समय तीनों गायक मिलकर 'हिंकार' का उच्चारण करते थे। उसके साथ ही प्रस्तोता सामगीत के प्रस्ताव भाग को ओंकार सहित गाता था। मन्त्र या गीत के आरम्भ को 'प्रस्ताव' कहते थे। यह गीत का मुखड़ा होता था। 'प्रस्ताव' एक विशेष प्रकार का स्तोत्र था जो ब्राह्मण या प्रस्तोता द्वारा सामगान के आरम्भ में गाया जाता था।
2. **उद्गीत** – इस विभाग को गाने वाला ऋत्विज 'उद्गाता' कहलाता था। ये भाग सामगान में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। 'उद्गीत' विभाग के सभी स्तोत्रों का गान 'ओंकार' से प्रारम्भ किया जाना आवश्यक था। उदगीत्, गीत का मुख्य और अधिकांश भाग होता था। 'उद्गाता' का अर्थ है ऊँचा गाने वाला। प्रायः 'उद्गीत' भाग उच्च स्वरों में होता था।
3. **प्रतिहार** – 'प्रतिहार' भाग के गाने वाले को प्रतिहर्ता कहते थे। प्रतिहर्ता उद्गीत के अन्तिम पद से गाने को पकड़ कर 'प्रतिहार' भाग गाता था। 'प्रतिहार' का अर्थ है दो विभागों को जोड़ने वाला।
4. **उपद्रव** – उपद्रव का गान उद्गाता यानि प्रमुख सामगायक करता था। ये प्रतिहार के अन्त के भाग का गान करता था।
5. निधन – सामगान के अन्तिम भाग को 'निधन' कहते थे। 'ओम्' का उच्चारण कर जब तीनों ऋत्विज यानि प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहार एक साथ मिलकर सामगान करते थे तब वही भाग निधन कहलाता था।

सामगान भी इसी दृष्टिकोण के अन्तर्गत आलाप आदि नियमों से तथा शैलीगत विशिष्टताओं के कारण मर्यादाबद्ध, ऋक् तथा यजुष से उत्पन्न होने के कारण अपौरूषेय, ऋषियों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण ब्रह्मोन्मुख साधना से परिपूरित, विशिष्ट ऋचाओं को ही गेयात्मकता प्रदान करने के कारण देवताओं की स्तुतियों से परिपूर्ण, शब्दों की अपेक्षा गेयात्मकता एवं प्रवाहात्मकता का अधिक महत्व होने के कारण भावात्मक सूक्षमता पर आधारित एवं शास्त्रोक्त परम्परा से आबद्ध होने के कारण शास्त्रीय परम्परा से परिपूर्ण, मार्गी संगीत का ही द्योतक है। जिस प्रकार प्रत्येक कालखण्ड में लोक संगीत शास्त्रीय संगीत से तथा शास्त्रीय संगीत लोक संगीत से प्रेरित रहा है उसी प्रकार वैदिक काल में भी इन दोनों के एक दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक है। आधुनिक युग में "मार्गी संगीत" शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। जो आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत और अशास्त्रीय संगीत प्रचलित है उसका मूल उद्देश्य लोकरंजनकारी और परिवर्तनशील है, उसको गान कहा जाता है। गान को ही देशी संगीत भी कहा जाता है।

मार्गी संगीत की विशेषताएं :–

1. मार्गी संगीत का सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था।
2. मार्गी संगीत के नियम कठोर थे और उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता था।
3. मार्गी संगीत शब्द प्रधान था।
4. कहा जाता है कि मार्गी संगीत की रचना बह्मा जी ने खुद की और फिर उसकी शिक्षा भरत को दी।
5. गन्धर्व इस संगीत में बहुत निपुण होते थे। इसलिए इसका प्रयोग गन्धर्व जाति तक सीमित रहा।
6. आधुनिक युग में मार्गी संगीत का स्वरूप नहीं मिलता। मार्गी के स्थान पर शास्त्रीय संगीत प्रचलित है।

देशी संगीत – देशी गान से भाव उस संगीत से है जिसका प्रयोग साधारण लोगों ने अपने मनोरंजन के लिए किया। अर्थात् देशी संगीत लोगों का संगीत था उसका मुख्य उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना था। जो संगीत, संगीताचार्य और संगीतकारों ने अपनी बुद्धि से और विशेष कलात्मकता से लोक–रूचि अनुसार पेश किया, उसको गान कहा गया। शारंगदेव ने ऐसे संगीत को देशी संगीत कहा। देशी संगीत की परिभाषा देते हुए पं0 शारंगदेव ने कहा है कि भिन्न–भिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार मनुष्य इसको गा–बजाकर या नृत्य करके अपने हृदय का मनोरंजन करता है, उसको देशी संगीत कहा जाता है। इसी प्रकार पं0 दामोदर ने भी कहा है कि वह संगीत, जो देश के भिन्न–भिन्न भागों में, वहां के रीती–रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करे, उसको देशी संगीत कहा जाता है। उपर्युक्त कथन से यही कहा जा सकता है कि संगीत की जिस धारा को संगीतकारों और संगीतचार्यों ने जनरूचि के अनुसार समय–समय पर इसमें परिवर्तन करके पेश किया, उसे गान संगीत कहा गया। असल में गान को ही देशी संगीत कहा गया।

वैदिक कालीन जीवन में देशी संगीत का पर्याप्त प्रचलन था। धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। गीत तथा वाद्यों के साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्यों की संगति की जाती थी। चीनी मिट्टी की एक मुद्रा में एक पुरूष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। आज भी आदिवासी जातियों में व्याघ्रादि हिंस्र पशुओं के प्रवेश द्वार पर ग्राम के चारों ओर ढोलक के द्वारा भयंकर गर्जना करने की प्रणाली विद्यमान है। हड़प्पा से प्राप्त एक दूसरे मुद्रा में वाद्य के सम्मुख ढोल बजाए जाने का दृश्य है ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु प्रदेश में ढोल के साथ–साथ तार के वाद्य भी प्रचलित थे। दो मुद्राओं में मृदंग जैसी वस्तुएं अंकित हैं। ढोल का चित्रण भी एक दूसरी मुद्रा पर है। इनमें एक स्त्री ढोल को बगल में दबायए हुए है। तत्कालीन समाज में अनुशासित सामगान रूपी मार्गी संगीत के साथ–साथ देशी संगीत प्रचुर मात्रा में प्रयोजनीय था। खुले प्रांगण में नृत्य कला के कार्यक्रम में नर–नारी दोनों का भाग लेना, वीणा और तुणव की ध्वनि के साथ गान करते जनसमूह का रात्रि जागरण करना, सोमयाग के विशेष अवसर पर सिर पर कलश रख मार्जलीय परिक्रमा करती हुई दासकुमारियों के

नाचने गाने का उल्लेख (तै.सं. 7/5/10/3), बुनाई करते हुए मनोविनोद के लिए गाए गए गीत आदि इस बात का प्रमाण है कि सामान्य समाज में भी संगीत का प्रयोग किया जाता था।

अथर्ववेद में उल्लिखित 'गाथा', 'नाराशंसी' तथा 'रैभी' आदि गीत प्रकार जनसामान्य द्वारा प्रयुक्त गीत ही थे, ऐसा विद्धानों का मत है। क्योंकि डा.परांजपे के अनुसार गाथा आदि गीतों का स्वरूप परम्परागत वीरकाव्य की भांति था जिनका गायन व्यवसायी गायकों द्वारा लौकिक समारोहों पर, राजसभाओं में या विवाह आदि अवसरों पर किया जाता था। नाराशंसी गीत प्रकारों में राजाओं की प्रशंसा की जाती थी। विद्वानों का यह भी मत है कि गाथा गीत प्रकार परम्परागत लौकिक पुरूषों से सम्बन्धित होते थे तथा नाराशंसी गीत प्रकार समकालीन राजाओं की स्तुति से परिपूर्ण होते थे। इन गीत प्रकारों को गाने वाले व्यवसायी गायक–वादक सूत व शैलूष आदि जातियों से सम्बन्ध रखते थे जो सम्भवतः उच्च जातियां नहीं थी।

गायन, वादन और नृत्य तीनों का विकास हमें वैदिक युग में मिलता है। वीणा वाद्य का विकास इस युग में हो चुका था। गायन के साथ इसका प्रयोग भी हो चुका था। अधिकतर नारियां वीणा–वादन करती थी। संगीत के विशेष आयोजन होते थे और नर्तकियां उनमें खुलकर भाग लेती थी। समाज में नृत्य–कला काफी विकसित हो रही थी। इसका प्रमाण ऋगवेद के श्लोक (5/33/6) में आया है– **'नृत्यमनों अमृता'।**

आर्य जाति स्वभाव से ही संगीतप्रिय थी। वैदिक युग में देशी संगीत आयोजन और प्रतियोगिताओं का एक मनोरंजन रूप 'समन' के नाम से देखने में आता है। यह समन एक प्रकार से सांगीतिक मेला था। जहां आमोद–प्रमोद के लिए युवक–युवतियां जाते थे। कुमार और कुमारियां वहां वर की खोज में जाते थे। इस सांगीतिक उत्सव में कुमारियों कि सांगीतिक प्रतिभा की जांच होती थी और सफल एवं प्रतिभा सम्पन्न कुमारियों का चयन विवाह के लिए हो जाता था। यह 'समन' आगे चल कर 'समज्जा' के नाम से प्रस्फुटित हुआ।

वैदिक काल में देशी संगीत को उच्च सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। इसी युग में वीणा का प्रयोग होने लगा था, जो कि पूर्ण सांगीतिक वाद्य यन्त्र था। इस काल में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों दृष्टियों का पर्याप्त प्रचलन दृष्टिगोचर होता है। गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायन्न, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग होता है। ऋगवेद की रचनाएं स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण 'स्तोत्र' कहलाती थी। गीत–प्रबन्धों को गाथा कहा जाता था, जो एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार है और इन गाथाओं का गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था। इनके गायक 'गायन्नि्' कहलाते थे। भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भावभूमि पर प्रवाहित होती रही है तथा उसका प्रयोजन लोक कल्याण रहा है। इसके कण–कण में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की आत्मा समाई हुई है। पूजा के अवसरों पर गाए जाने वाले संगीत की पवित्रता और देशी संगीत धुनों की मनोरंजकता ऐसी धूरियां हैं जिनके आस–पास सारा संगीत घूमता है। प्राचीन जातियों का जो साहित्य उपलब्ध है उसमें प्रार्थनाओं, पूजागीतों, स्तुतियों और वंदनाओं की मात्रा अधिक है।

देशी संगीत के दो मुख्य भेद निबद्ध और अनिबद्ध हैं। इसको भरत, मतंग और शारंगदेव ने भी माना है।

1. निबद्ध गायन – जो सांगीतिक रचना तालबद्ध और छंदबद्ध आदि हो उसको निबद्ध गायन के अन्तर्गत माना जाता है। प्राचीन काल में प्रबंध, वस्तुरूपक आदि रचनाएं और आधुनिक युग में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

2. अनिबद्ध गायन – जो सांगीतिक सामग्री ताल में न बंधी हो, उसे अनिबद्ध गायन की श्रेणी में रखा जाता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत आलाप को माना जाता है। निबद्ध गायन के अन्तर्गत आने वाली रचनाएं, शैलियां, कलात्मकता और भावुकता प्रकट करती हैं। जबकि अनिबद्ध गायन के अन्तर्गत आलाप गायन में(विशेष सांगीतिक शैलियां, रचनाएं आदि को जिस राग में पेश करना हो, उसके विशेष स्वरों की बढ़त करते हुए अपनी भावना अनुकूल) राग स्पष्टीकरण किया जाता है। शारंगदेव ने इसको आलिप्त गान कहा है। आलिप्त का अर्थ है विस्तार करना।

आधुनिक काल में देशी संगीत का रूप – आज का शास्त्रीय संगीत देशी संगीत की ही देन है। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत जो परिवर्तन समय–समय पर शैलियों के रूप में, उनकी परम्पराओं के रूप में आए, वे देशी संगीत के कारण ही थे। शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए उनमें समय के अनुसार नए–नए तत्वों और शैलियों को अपनाया गया। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आने वाली शैलियों जैसे–ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि सभी देशी संगीत की ही देन हैं। ये शैलियां अलग–अलग समय में प्रचलित रही हैं जैसे मध्य काल में ध्रुपद का अधिक प्रचार रहा, उसके पश्चात समय के परिवर्तन के साथ लोगों की रूचि अनुसार ख्याल शैली का अविष्कार हुआ। मुहम्मद शाह रंगीले के समय तक सदारंग–अदारंग ने अनेक ख्यालों की रचना की परन्तु वह स्वयं ध्रुपद शैली ही गाते थे क्योंकि उस समय तक ख्याल को नीच वर्ग की शैली माना जाता था। परन्तु धीरे–धीरे ख्याल का अधिक प्रचार हो गया और ध्रुपद का प्रचार कम हो गया। इस प्रकार ख्याल के युग में ठुमरी और गज़ल आदि गीत शैलियों को अशास्त्रीय संगीत माना जाता था। परन्तु धीरे–धीरे ये शैलियां भी लोकप्रिय बन गई। उच्च कोटि के संगीतकार शास्त्रीय संगीत पेश करते समय कई प्रकार की लोकधुनों को गाते और वाद्यों पर बजाते हैं और लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार लोकधुनें रागों का रूप धारण कर लेती हैं। खमाज, खम्भावती, काफी, पीलू, मांड़, सारंग आदि रागों के नाम इस वर्ग में आते हैं।

इस प्रकार मार्गी और देशी का परस्पर एक विशेष सम्बन्ध रहा और समय–समय पर यह एक–दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। लोक–संगीत का मौलिक पक्ष बहुत कम मिलता है। उसका मुख्य कारण है कि चित्रपट और शास्त्रीय संगीतकारों ने लोकधुनों को शास्त्रीय संगीत में इस प्रकार सम्मिलित कर दिया है कि लोक–संगीत का मौलिक पक्ष दिन–प्रतिदिन कम होता जा रहा है। आज का शास्त्रीय संगीत और अशास्त्रीय संगीत देशी संगीत का ही रूप है।

देशी संगीत प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म का असली रूप होता है। इसमें लोक संस्कृति के अंशों का बहुत ही सुंदर ढंग से वर्णन किया गया होता है। देशी संगीत का मुख्य उद्देश्य लोकरंजनकारी था, इसलिए इसमें समय–समय पर परिवर्तन आता रहा है।

देशी संगीत की विशेषताएं :–

1. देशी संगीत का मूल उद्देश्य जनरंजनकारी था।
2. देशी संगीत प्रत्येक देश और प्रांत का अलग–अलग होता है।
3. देशी संगीत स्वर प्रधान होता है।
4. देशी संगीत में लोगों की रूचि अनुसार परिवर्तन होता रहता है।
5. देशी संगीत के नियम मार्गी संगीत की भांति कठोर नहीं होते हैं।
6. आधुनिक युग में देशी संगीत शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि उसके स्थान पर लोक संगीत का प्रयोग होता है।

मार्गी संगीत और देशी संगीत में अन्तर :–

1. मार्गी संगीत शब्द प्रधान था जबकि देशी संगीत स्वर प्रधान रहा।
2. मार्गी संगीत का सम्बन्ध अध्यात्मवाद के साथ था जबकि देशी संगीत का सम्बन्ध जनरंजनकारी था।
3. मार्गी संगीत के बारे में यह कहा जाता है कि इसको ब्रह्मा जी ने खुद बनाया जबकि देशी संगीत मनुष्य ने अपनी रूचि के अनुसार बनाया।
4. मार्गी संगीत का क्या स्वरूप था, इसके बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती परन्तु देशी संगीत प्रत्येक प्रांत का अलग–अलग होता है।
5. मार्गी संगीत के नियम बहुत कठोर होते थे परन्तु देशी संगीत में नियमों की कठोरता नहीं होती थी।
6. मार्गी संगीत का दूसरा नाम गन्धर्व था जबकि देशी संगीत का दूसरा नाम गान था।
7. आधुनिक काल में मार्गी संगीत के स्थान पर शास्त्रीय और देशी संगीत के स्थान पर लोक संगीत शब्द का प्रयोग किया जाता है।

4.4 नायक व गायक

नायक – गुरू से ग्रहण की गई विद्या या कला को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने वाला नायक कहलाता है। गुरू से वह संगीत कला उसी रूप में ग्रहण की थी अतः पीढ़ी दर पीढ़ी कला में आए निखार को और अधिक समृद्ध करते हुए बिना परिवर्तन किए हुए कला को एक ही रूप में रखने वाला कलाकार नायक कहलाता है।

किसी एक घराने में जब कलाकार किसी घराने का मिश्रण न करे और श्रोताओं के सुनते ही यह लगे कि शिष्य में तो उसके गरू की छाया प्रतिबिम्बित हो रही है तो शिष्य का यही गुण उसे नायक की पदवी दिलाता है तथा उसकी कला नायकी कहलाती है। नायकी की यदि ईमानदारी से रक्षा की जाए तो अनेक पीढ़ियों के संस्कार उसकी कला में स्वतः एकत्रित होते रहते हैं, फलतः उसका प्रभाव भी होना स्वाभाविक है।

प्राचीन काल में संगीत से वर्षा होना, पत्थर पिघलना, पशु–पक्षियों का संगीत के वशीभूत होना आदि किवदन्तियाँ आज भी समाज में प्रचलित हैं। यह कहा जा सकता है कि यदि हमने नायकी की रक्षा की होती अर्थात जैसा गुरू ने सिखाया वैसा ही शिष्य अगली पीढ़ियों को बिना परिवर्तन किए देते जाते तो वर्तमान युग में भी संगीत का वही प्रभाव होता पर ऐसा नहीं हुआ। यानी हमने नायकी को बचा कर नहीं रखा परिणामतः हमारे संगीत का इतना बड़ा ह्रास हो गया।

नायकी के ह्रास के कारण – (1)संगीतज्ञों के पास समय की कमी (2)खानपान में गिरावट (3)नैतिकता का पतन (4)संगीत कला के प्रति समर्पण में कमी (5)धन का लोभ (6)समय की मांग (7)मानव की सहज कमज़ोरी आदि।

मनुष्य गुणों को देर से ग्रहण करता है और अवगुणों को सहज ही अपना लेता है, शायद इसीलिए शारंगदेव को संगीत–रत्नाकर(भाग–2, पृष्ठ–156–169) में गायकों के गुणों के साथ अवगुणों को भी विस्तार से देना पड़ा।

वर्तमान में भातखण्डे जी द्वारा दी गई बन्दिशों को नायकी का उदाहरण कहा जा सकता है। प्राचीन काल में नायक बैजू नायक, गोपाल नायक, चरजू आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। हकीम मो0 करम इमाम ने अपने ग्रन्थ 'मादिनुल मूसीक़ी' में 12 नायकों के नाम इस प्रकार दिए हैः–
(1) भानु, (2) लोहंग, (3) डालु (4) भगवान (5) गोपालदास (6) बैजू (7) पाण्डे (8) छज्जू (9) बक्षु (10) घोपडु (11) मीरामध (12) अमीर खुसरो

गायक – किसी भी विशिष्ट संगीत विधा की गायकी को जानने वाले व्यक्ति को गायक कहा जाता हैं। गायक अपनी संगीत विधा में निपुण होता है तथा उसे गायकी के विभिन्न पक्षों की जानकारी होती हैं। प्राचीन से देशी संगीत के अन्तर्गत अनेक परिवर्तन हुए, अतः इस प्रकार जनरूची के कारण परिवर्तनशील विभिन्न विधाओं की गायकी को जानने वाला गायक ही है। प्राचीन काल में जब संगीत, गांधर्व से अलग हुआ और जो 'गान' कहलाया उसका उद्देश्य ही जन–मन–रंजन करना था। वही गान आगे चल कर देशी–संगीत कहलाया और गांधर्व मार्ग–संगीत के नाम से जाना गया। रूचियाँ सदा से परिवर्तित होती रहती हैं। अतः गायकों को भी अपने संगीत में जन–रूचि के अनुसार कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था, अतः संगीत भी परिर्वतनशील हुआ।

भरत के समय में जो संगीत था, शारंगदेव के समय वह केवल लक्षण बन गया, यानी संगीत में परिवर्तन हो गया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जन–रूचि परिवर्तित हो गई। समय के साथ संगीत बदलता गया और गायकी में भी परिवर्तन हुआ। जाति–गान के स्थान पर ग्राम–राग और देशी–राग आए और ध्रुवा के स्थान पर प्रबन्ध आया। उसके पश्चात ध्रुपद–शैली और आगे चलकर ख्याल–शैली का प्रचार हुआ। ख्याल–शैली में भी आलाप में कमी आई और तान को अधिक महत्व दिया जाने लगा। कहने का भाव यह है कि गायकी जन–रूचि पर आधारित है तथा जो अपनी क्षमता और श्रोताओं की रूचि के अनुसार अपनी गायकी को प्रस्तुत करता है, वही गायक कहलाता है।

4.5 वाग्गेयकार

"शब्दानुशासनमभिधान प्रवीणताछनदः प्रभेदवेदित्यमलंकरेषु कौशलम्
रस भाव परिज्ञान देश स्थितिषु चातुरी"

अर्थात वाणी की रचना करके उसको गेय रूप देने वाला व्यक्ति, जिसको व्याकरण, छन्द, कोष, अलंकार, रस, भाव आदि की पूरी जानकारी हो, उसे वाग्गेयकार कहा जाता है। पं. भातखंडे जी के अनुसार "प्राचीन समय में जिन संगीत विद्वानों को पद–रचना, स्वर–रचना दोनों का ज्ञान होता था, उनको वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती थी।"

यह शब्द तीन शब्दों के मेल से बना है। वाक् का अर्थ है पद–रचना, गेय का अर्थ है गाया जाने वाला और कार का अर्थ है करने वाला, अर्थात् वाणी की रचना करके उसको गायन रूप देने वाले व्यक्ति को वाग्गेयकार कहा जाता है। पं. शारंगदेव, पं. दामोदर ने इसकी विशेषताओं का वर्णन करते समय मातु और धातु शब्द का प्रयोग किया है। दूसरे शब्दों में 'वाक्' अर्थात पद–रचना को मातु और गीत पक्ष को धातु कहते हैं। चैतन्य देव 'एन इंट्रोडक्शन टू इण्डियन म्युज़िक' में इसके बारे में लिखते हैं– "A Composer is known as Vaggeyakar. This word is derived from three others Vak (word), Geya (song), Kara (One who makes). As the term shows, a Composer must be a master of word and music. If on the other hand, a person who writes only the Literature of a song he is Matukara (matu word of speech) ; If he provides the music to the given poem he is Dhatukara (Dhatu score musical part of song). But a Vaggeyakara Composes both the poem and music, that is he creates a complete song."

संगीत मकरंद में चौथे अध्याय के 21वें श्लोक से लेकर 47वें श्लोक तक वाग्गेयकार के गुणों का वर्णन किया गया है।

1. जो संगीत में निपुण हो।
2. जिसको संगीत के विभिन्न पक्षों की पूरी जानकारी हो।
3. जिसको देश की विभिन्न भाषाओं की जानकारी हो।
4. जिसको व्याकरण की पूरी जानकारी हो।
5. छन्द के भेदों को जानने वाला हो।
6. साहित्य में वर्णित विभिन्न अलंकारों, उपमाओं का ज्ञान हो।
7. विभिन्न रसों के लिए उचित शब्दावली का ज्ञान हो।
8. उचित लय और ताल के प्रयोग करने की पूरी जानकारी हो।
9. संगीत के विभिन्न काकू भेदों का ज्ञान हो।
10. जो बुद्धिमान और अपनी कला के द्वारा श्रोताओं को आकर्षित कर सके।
11. जिसको संगीत के परिभाषिक तत्वों(सैद्धांतिक और क्रियात्मक) की पूर्ण जानकारी हो।
12. जिसकी स्मरण शक्ति तेज़ हो।
13. जिसकी संगीत के परम्परागत पक्ष की पूर्ण जानकारी हो।
14. जो पढ़ा–लिखा हो।

प्राचीन शास्त्रों में तीन प्रकार के वाग्गेयकार का वर्णन मिलता है–उत्तम, मध्यम, निम्न(घटिया)। जिस व्यक्ति में उपर्युक्त वर्णित सारे गुण हों, उसे उत्तम वाग्गेयकार कहा जाता है। जो स्वर–रचना में तो निपुण हो परन्तु पद–रचना में पूर्ण जानकारी न रखता हो, उसे मध्यम वाग्गेयकार कहा जाता है। जिसकी मातु(पद–रचना), गीत–रचना के उचित पक्ष की पूर्ण जानकारी न हो, उसे निम्न वाग्गेयकार कहा जाता है। संगीत में निम्न वाग्गेयकार का कोई स्थान नहीं है।

संगीत के शास्त्र में इनको नायक भी कहा जाता है। प्राचीन काल और मध्यकाल में वाग्गेयकारों के बहुत नाम मिल जाते हैं, जैसे–हरीदास, तानसेन, नायक बक्श, कौड़ी रंग, रंग बरस, तानसेन, अख्तर पिया, ललन पिया, कदर पिया आदि।

मध्यकालीन शास्त्रीय संगीत के वाग्गेयकार के अलावा भक्ति लहर के पीरों–फकीरों, गुरूओं को वाग्गेयकार कहा जा सकता है। डॉ. डी.एस.नरूला ने गुरू नानक देव जी को उत्तम वाग्गेयकार की उपाधि दी है। परन्तु इन वाग्गेयकार को शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में रखना उचित नहीं है क्योंकि इन्होंने अपनी वाणियों के प्रचार के लिए संगीत का केवल सहारा ही लिया है। मध्यकाल के

इस श्रेणी के वाग्गेयकारों के नाम इस तरह हैं–गुरू नानक देव जी, कबीर जी, सूरदास, मीरा बाई, जासो बाई, सहिजो बाई, मलूक दास, परमानंद आदि। जिस तरह भक्ति काल का कवि खुद संगीतकार भी था, उस तरह आज का कवि नहीं है। आज का कवि अपनी रचना में सांगीतिक पक्ष का ध्यान तो जरूर रखता है परन्तु यह जरूरी नहीं कि वह उसकी धुन को भावना के अनुकूल बना सके। संगीत को स्वर देने वालों के क्षेत्र भिन्न बन गए हैं। जिसको स्वरकार, संगीत निर्देशक, संगीतकार आदि कहा जाता है। इन कारणों से ही वर्तमान काल में शास्त्रीय वाग्गेयकारों की बहुत कमी है।

4.6 पण्डित

प्राचीन समय में जो विद्वान् संगीत–शास्त्र का पूर्ण ज्ञान रखता था तथा गायन–कला का साधारण ज्ञान रखता था, उसे पण्डित कहते थे। पण्डित संगीत शास्त्रों का निरन्तर अध्ययन करते हुए नवीन अनुसंधानों का संबंध उससे जोड़ता हैं। पण्डित रागों एवं तालों की पूर्ण शास्त्रात्मक अभिव्यक्ति को शास्त्रों में स्थान देने में सक्षम है। पण्डित संगीत के क्रियात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति को भी शास्त्रों में स्थान दे सकता है। परन्तु उसे प्रदर्शित करने में मध्यम श्रेणी में आता हैं। पण्डितों का संगीत को शास्त्रात्मक रूप में संरक्षण करने हेतु विशेष योगदान है। क्योंकि मध्यकाल से ही क्रियात्मक रूप में जो संगीत विद्वान संगीतज्ञों के पास सुरक्षित था वह शास्त्रों में स्थान मिलने से ही संरक्षित रह पाया है। पण्डितों के संगीत शास्त्रों से हमें मध्यकाल से वर्तमान तक सम्पूर्ण सांगीतिक तत्वों, बंदिशों, रचनाओं के स्वरूप एवं प्रयोगों को लिखित रूप में जान पाए हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पण्डितों द्वारा ही संगीत शास्त्रों का आर्विभाव एवं संगीत के विभिन्न पक्षों का संरक्षण सम्भव हो पाया है। पण्डित एवं वाग्गेयकार में यह विशेष अन्तर हैं कि वाग्गेयकार शास्त्र के साथ–साथ क्रियात्मक पक्ष का भी पूर्ण ज्ञान रखता है तथा वह साहित्य एवं अनेक भाषाओं को भी जानता हैं ।

4.7 कलावन्त

किसी भी विशिष्ट कला विधा के निर्माता एवं प्रसारक को कलावन्त कहा जाता है। उस विशिष्ट कला के समस्त पक्षों को पीढ़ी दर पीढ़ी समृद्धशाली एवं लोकरंजन हेतू उसमें मर्यादित परिवर्तन करना भी कलावन्त का विशिष्ट कार्य है। निरन्तर अपनी कला विधा के विभिन्न पक्षों की समीक्षा करना एवं उसे समाज में उचित स्थान दिलाने में कलावन्त की विशेष भूमिका है। कलावन्त अपनी कला को परम्परा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से निरन्तर बचाए हुए है। इन्हीं कलावन्तों के प्रयासों से परम्परागत कलाओं को बचाया जा सका है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कलावन्त अपनी विशेष कला को समृद्धशाली बना रहें हैं, मूल रूप में सहेजे हुए हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी इसका प्रसार करते रहे हैं।

4.8 गीत

जो सांगीतिक रचना तालबद्ध और छंदबद्ध आदि हो उसको गीत के अन्तर्गत माना जाता है। प्राचीन काल में प्रबंध वस्तुरूपक आदि रचनाएं और आधुनिक युग में ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। गीत के अन्तर्गत आने वाली रचनाएं एवं शैलियां, कलात्मकता और भावुकता प्रकट करती हैं।

आधुनिक संगीत में गीत रचना के मुख्य नियम–(Laws of Musical Composition)– शास्त्रीय संगीत में गीत रचना(Musical Composition) का विषय एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रचलित शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत साधारणतः ध्रुपद, धमार, ख्याल(विलम्बित और द्रुत), टप्पा, ठुमरी, तराना आदि गीतों के भेद पाए जाते हैं। इस क्षेत्र में तानसेन, सदारंग, अदारंग, मनरंग, हररंग, शोरीमियाँ, रंगीले इत्यादि गीतकारों का विशेष स्थान है। आधुनिक काल भी नई–नई रचनाओं का समय है जिसमें अनेक नई तथा सुन्दर रचनाएं सुनने को मिलती हैं।

गीत रचना के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना अति आवश्यक हैः–

(1) काव्य – सर्वप्रथम गीतकार को यह देखना है कि काव्य गेय, स्पष्ट, सरल है या नहीं। काव्य सरल साधारण श्रोताओं के समझ में आने वाला, हृदयग्राही तथा भावनात्मक होना चाहिए।

(2) रस – कविता के रस को ध्यान में रखते हुए उसके अनुकूल ही राग का चयन करना चाहिए। अधिकतर श्रृंगार, करूण, वीर, शान्त – ये चार रस ही संगीत में प्रधानता रखते हैं। इन चारों में भी श्रृंगार रस अधिक महत्वपूर्ण है। जिस रस का काव्य है उसी रस का राग चुनना आवश्यक है। उदाहरणार्थ श्रृंगार रस के राग काफी, विहाग, सिन्दूरा, खमाज, पीलू, बागेश्री इत्यादि हैं, वीर रस के मालकौंश, शंकरा आदि हैं, शान्त रस के राग केदार, श्री, भूपाली आदि हैं तथा करूण रस के तोड़ी, भैरवी, यमन, कालिंगड़ा आदि हैं।

(3) राग निर्वाचन के बाद उस का मुख्य स्वरूप ध्यान में रखना चाहिए।

(4) राग में कुछ विशेष स्वर होते हैं जिससे राग प्रारम्भ तथा समाप्त किया जाता है। ऐसे स्वरों को ग्रह और न्यास स्वर कहते हैं। आजकल इन स्वरों पर ध्यान नहीं दिया जाता, परन्तु कुछ राग ऐसे हैं जिनमें कुछ खास स्वरों पर ही अधिकतर न्यास किया जाता है।

(5) स्थाई तथा अन्तरा राग के अलग–अलग उठाव और चलन होते हैं जिसका ध्यान रखना आवश्यक है।

(6) गीत रचना में राग के ऐसे स्वरों का चुनाव होना चाहिए जिससे काव्य का भाव स्पष्ट हो सके।

(7) ताल – गीत रचना ऐसी ताल में करनी चाहिए जिससे राग और काव्य का रस स्पष्ट हो जाए।

(8) ताल के आघातों(विभागों) का गीत के शब्दों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि गीत के उचित स्थानों पर ताल के आघात(ताली और खाली) नहीं पड़ती तो उसमें रसानुभूति नहीं हो सकती।

(9) अन्त में काव्य तथा राग में विश्रान्ति स्थानों का ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि राग में विश्रान्ति स्थानों से अर्थ तथा भाव स्पष्ट होते हैं।

4.9 गन्धर्व और गान

संगीत की परम्परा भारत में पुरातन है। संगीत कला का मुख्य उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। आरम्भ में संगीतकला कला के रूप में नहीं थी, बल्कि इस रूप में आने से पहले इसका एक लम्बा युग था। संगीत के आदि ग्रंथ वेद माने जाते हैं। वेदों की ऋचाएं जिनको आर्थिक, गाथिक और सामि कहा जाता था, उनके नियमों के अनुसार ही संगीत का प्रसार किया जाता था। संगीत के इतिहास से पता चलता है कि आरम्भ से ही दो धाराएं समानान्तर रूप में चलती रहीं।

1. वैदिक संगीत 2. लौकिक संगीत

वैदिक संगीत के अन्तर्गत उसकी ऋचाओं को विशेष नियमबद्ध ढंग से गाया जाता था, जबकि लौकिक संगीत में मनुष्य अपनी रूचि के अनुसार परिवर्तन कर सकता था। यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि संगीत शब्द का प्रयोग उस समय नहीं किया जाता था। उस समय गीत शब्द कहा जाता था। गीत से भाव स्वर और लयबद्ध रचना से था। गीत के दो भेद माने गए।

1. गन्धर्व 2. गान

गन्धर्व – इस गीत को गान्धर्व लोग गायन करते थे, इसलिए इसका नाम गन्धर्व पड़ गया। इसका मुख्य उद्देश्य मोक्ष–प्राप्ति था। प्राचीन गन्धर्व गायन को मार्गी संगीत भी कहा जाए तो निराधार नहीं होगा। इसकी पुष्टि पं. शारंगदेव और दामोदर ने अपने–अपने ग्रंथों में की है। इन दोनों धाराओं का मुख्य उद्देश्य मोक्ष–प्राप्ति था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि वैदिक गान से ही गन्धर्व संगीत की उत्पत्ति हुई। वैदिक युग के अन्त में गान्धर्व संगीत अप्रचलित हो गया इसलिए उसके मूल रूप के बारे में स्पष्ट करना सम्भव नहीं है।

गान – जो संगीत, संगीताचार्य और संगीतकारों ने अपनी बुद्धि से और विशेष कलात्मकता से लोकरूचि अनुसार पेश किया, उसको गान कहा गया। शारंगदेव ने ऐसे संगीत को देशी संगीत कहा। देशी संगीत की परिभाषा देते हुए पं. शारंगदेव ने कहा है कि भिन्न–भिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार मनुष्य इसको गा–बजाकर या नृत्य करके अपने हृदय का मनोरंजन करता है, उसको देशी संगीत कहा जाता है। इसी प्रकार पं. दामोदर ने भी कहा है कि वह संगीत, जो देश के भिन्न–भिन्न भागों में, वहां के रिती–रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करे, उसको देशी संगीत कहा जाता है। उपर्युक्त कथन से यही कहा जा सकता है कि संगीत की जिस धारा को संगीतकारों और संगीतचार्यों ने जनरूचि के अनुसार समय–समय पर इसमें परिवर्तन करके पेश किया, उसे गान संगीत कहा गया। असल में गान को ही देशी संगीत कहा गया। देशी संगीत के दो मुख्य भेद निबद्ध और अनिबद्ध भरत, मतंग और शारंगदेव ने भी माने हैं।

4.10 तिरोभाव–अविर्भाव

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग अमूल्य देन है। राग का मूल उद्देय रंजकता उत्पन्न करना है। संगीत में रंजकता उसको कहा जाता है जो आत्मिक आनंद दे। राग को प्रस्तुत करते समय राग में स्वरों का उचित लगाव, राग का उचित स्वरूप वादी, संवादी और विशेष नियमों का प्रयोग करते समय विभिन्न सांगीतिक क्रियाओं से राग की सुन्दरता का तत्व उभारा जाता है। राग में अविर्भाव और तिरोभाव की क्रियाओं से राग की सुन्दरता और रंजकता का संचार किया जाता है। कलाकार राग का विस्तार करते समय कुछ देर में मूल राग के स्वरूप को छुपा देता है। जिससे श्रोताओं को दूसरे राग की झलक लगने लगती है, ऐसी क्रिया को राग का तिरोभाव कहा जाता है। परन्तु जब फिर वापिस मूल राग के स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है तब उसको अविर्भाव कहा जाता है। राग में तिरोभाव–आविर्भाव की क्रिया कुशल संगीतकार ही कर सकते हैं। इसी क्रिया को यदि उचित ढंग से न किया जाए तब राग की हानि हो सकती है। इसलिए इस क्रिया को करने से पहले विशेष तत्वों की तरफ ध्यान देना जरूरी है।

1. यह क्रिया केवल उस समय ही करनी चाहिए जब राग का स्वरूप पूरी तरह कायम हो गया हो अर्थात् जब श्रोताओं को पूर्ण रूप से राग की पहचान हो जाए।
2. यह क्रिया अधिकतर समप्रकृतिक राग द्वारा ही पेश करनी चाहिए।
3. यह क्रिया बहुत थोड़े समय के लिए होनी चाहिए नहीं तो मूल राग की हानि हो सकती है।
4. यह क्रिया करने से राग को कोई नुकसान नहीं होगा परन्तु अनुचित ढंग से करने से राग को हानि हो सकती है।

आविर्भाव का अर्थ है राग में मूल स्वरूप को प्रकट रूप में दिखलाना और तिरोभाव का अर्थ है कि किसी अन्य राग की छाया दिखला कर राग के स्वरूप को कुछ समय के लिए आच्छादित कर देना। यह प्रक्रिया वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए की जाती है, अतः सीमित समय के लिए ही प्रक्रिया को किया जाना चाहिए। अधिक देर तक तिरोभाव करने से मूल राग अपना प्रभाव खो सकता है। तिरोभाव के बाद पुनः जब मूल राग में आया जाता है, उसे आविर्भाव कहते हैं। तिरोभाव दो प्रकार से किया जाता हैः– (1) सम–प्रकृति राग की छाया दिखला कर (2) मूर्च्छना–भेद से आधार स्वर को परिवर्तित करके।

1. **सम–प्रकृति राग की छाया दिखलाकर** – किसी राग को गाते–बजाते समय जब राग का प्रभाव पूरी तरह से छा जाता है तब उस राग से मिलते–जुलते किसी अन्य राग के समान स्वर–समूह जो रागों में समान रूप से आते हों ऐसे स्वर समूहों को गायक या वादक वैचित्र उत्पन्न करने के लिए प्रयोग करता है, इससे मूल राग कुछ समय के लिए छिप जाता है, इस छिपन की क्रिया को तिरोभाव कहते हैं। जैसे मूल राग यदि भैरवी गाया या बजाया जा रहा हो तो निम्न प्रकार से होगा – सा रे सा, ग ऽ सा रे सा, धनि सा रे सा, सा रेग म, ग म गमपम ग म रे सा।

तिरोभाव – नि सा, ग म प, म प ग म निसाग सागम ग म प, म प ग म ग यहाँ तक भैरवी भी है और भीमपलासी भी है, अतः भैरवी में भीमपलासी का तिरोभाव होगा पर इस प्रक्रिया में वे स्वर–समूह नहीं लिए जा सकते जो केवल भीमपलासी के हों। जैसे 'म ग रे सा', क्योंकि से स्वर भैरवी के नहीं हैं अतः तिरोभाव करते समय इन स्वरों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।
आविर्भाव –सारे सा, सा रेग म, प ध प म, ग म रे सा।

उत्तरांग में भैरवी में ही मालकौंस का तिरोभाव – ग म धनि सां, ध निध सां, सा ध म धनि सां, नि सा ग म ध नि सां, ग म ध म नि सां ऽ गं, यहाँ तक मालकौंस के स्वर–समूह हुए और साथ ही भैरवी के भी हैं, अतः कुछ समय के लिए भैरवी छिप गया है और मालकौंस उभर रहा है। यहाँ भी स्वर–समूह नहीं लगाए जा सकते हैं जो केवल मालकौंस के हों। जैसेः– 'मंगंसां' या 'सां धनिध म' ये स्वर–समूह भैरवी के नहीं हैं अतः तिरोभाव करते समय इन स्वरावलियों का प्रयोग नहीं कर सकते। आर्विभाव – सां रें सां, सां निध प ध प म, प म ग, सारेग म प, ग म रे सा।

यह तिरोभाव समान स्वरों वाले यानी किसी एक थाट के रागों में भी किया जा सकता है जैसे कल्याण थाट के दोनों मध्यम वाले अधिकांश रागों के पूर्वांग में तो भिन्नता है पर उत्तरांग में समान स्वर–समूहों का प्रयोग होता है। जैसे–कामोद, छायानट, गौड़–सारंग, हमीर। इनमें 'प ध मं

प सां, सां ध प, मं प ध प नि ध सां, सां रें सां,' इन स्वरावलियों के प्रयोग से कल्याण–थाट के दोनों मध्यम वाले राग ही रहेंगे। अतः किसी भी राग में ऐसे स्वर–समूहों के प्रयोग से मिलते जुलते राग की छाया दिखला कर तिरोभाव किया जा सकता है। कुछ समय के बाद पुनः मूल राग जो गाया जा रहा हो उस राग विशेष के स्वर लगा कर आर्विभाव करना होगा।

श्यामकल्याण व कामोद का अवरोह समान होने के कारण जब केवल अवरोह क्रम के स्वर समूहों का प्रयोग किया जाए तो दोनों राग होंगे अतः इन दोनों रागों में एक–दूसरे का तिरोभाव किया जा सकता है। कुछ समय के बाद आरोह–क्रम के स्वर लगा कर अभीष्ट राग में आने की क्रिया को आविर्भाव कहा जाएगा।

2. **मूर्च्छना–भेद से आधार–स्वर परिवर्तित करके** – मूल रूप से आधार स्वर षड्ज होता है, पर जब षड्ज के अतिरिक्त कुछ समय के लिए किसी अन्य स्वर को आधार स्वर यानी षड्ज मान लिया जाए तो मूल राग छिप जाएगा और उसके स्थान पर दूसरा राग दिखलाई देने लगेगा। जैसे कोमल–धैवत वाले ललित राग को गाते–बजाते समय यदि मध्यम को कुछ समय के लिए षड्ज मान लें तो ललित के स्वरों में तोड़ी राग दिखने लगेगा। जैसेः–

ललित – म मं म, ध ऽ मं म, नि ध नि मं ध मं मं
तोड़ी – सारे सा, ग ऽ रे ग रे सा, मं ग, मं रेगरे सा

यदि स्थिति चन्द्रकौंस गाते–बजाते समय होती है और यदि मध्यम को षड्ज मान लें तो मधुकौंस हो जाएगा। जैसेः–

चन्द्रकौंस – म ग म ध म, ग म ध नि सां, सां नि सां ध नि सां, सां गं सां
मधुकौंस – सानि सा ग सा, नि सा ग मं प, प मं प ग मं प, प नि प
चन्द्रकौंस – नि ध म ग म, ध नि सां नि सां
मधुकौंस – मं ग सा, नि सा ग मं प मं प

पाँच स्वरों वाले औडुव–जाति के रागों में यह क्रिया और भी आसान है। मालकौंस के षड्ज को आधार–स्वर मानने से मालकौंस, कोमल–गांधार को षड्ज मानने से बिलावल–थाट का दुर्गा, मध्यम को आधार मानने से धानी, कोमल धैवत को षड्ज मानने से भूपाली और कोमल–निषाद को आधार–स्वर मानने से मधुमाद–सारंग के स्वरान्तर प्राप्त होंगे। अतः मालकौंस में इन चारों रागों का तिरोभाव किया जा सकता है या उपरोक्त पाँचों रागों में एक–दूसरे का तिरोभाव किया जा सकता है।

मूर्च्छना–भेद से तिरोभाव करने से रागों के विस्तार की पर्याप्त जानकारी हो जाती है क्योंकि सभी रागों की तानें एक–दूसरे राग में प्रयोग करने की नई दृष्टि आ जाती है। समर्थ कलाकार इस रिति से आधार–स्वर बदल–बदल कर कोई भी राग अधिक समय गाते बजाते देखे जाते हैं। बड़े गुलाम अली खाँ साहब तो मूर्च्छना–भेद से आधार–स्वर परिवर्तित करके अविर्भाव–तिरोभाव की रीति का ही अधिक प्रयोग करते थे।

4.11 काकु

काकु का अर्थ है ध्वनि के उतार–चढ़ाव से भाव व्यक्त करना। संगीत में सभी स्वर आधार स्वर से ऊँचे या नीचे होने पर बनते हैं जिनसे संगीत निर्मित होता है। काकु से स्वरों का उतार–चढ़ाव या स्वरों का ऊँचा नीचापन प्रदर्शित होता है इसलिए काकु को संगीत की जननी कहा जाता है। समान शब्द होने पर भी यदि ध्वनि को भाव के अनुसार ऊँची या नीची कर दी जाए तो भाव में अन्तर आ जाता है। इसके अतिरिक्त यदि शब्दों के ठहराव में अन्तर कर दिया जाए तो भी अर्थ परिवर्तित हो जाता है। अर्ध–विराम से निम्नलिखित वाक्य का अर्थ ही विपरित हो गया है 'उसे रोको' मत आने दो', अब यहाँ रोको के बाद का अर्थ विराम 'मत' के पश्चात लगाने से अर्थ एकदम विपरित हो जाता है–'उसे रोको मत, आने दो'। इन दोनों वाक्यों में समान शब्द हैं केवल अर्धविराम के स्थान भेद से अर्थ परिवर्तित हो गया। अब काकु पर विचार करें। प्रश्नवाचक वाक्य में स्वर नीचे से ऊपर होता है जैसे यदि यह पूछना हो कि 'वह क्या है?' तो ध्वनि मध्य–षड्ज से पंचम तक उठती है इसके विपरित जब उत्तर देना हो ध्वनि मध्य–षड्ज से नीचे पंचम तक जाती है। कहने

का भाव यह है कि यदि लिखा हुआ न हो केवल कहना हो तो समान वाक्य होते हुए केवल मध्य–षड्ज से मध्य–पंचम तक ध्वनि जाए तो उत्तर लगता है। यही काकु का प्रयोग। काकु का क्षेत्र विशाल है। शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर(भाग–2, पृ.–175) में छह प्रकार के काकुओं का उल्लेख किया है जैसे स्वर काकु, राग काकु, अन्य–राग काकु, देश काकु, क्षेत्र काकु और यन्त्र काकु। इसके अतिरिक्त भाव व्यक्त करने के लिए कभी किसी शब्द पर दबाव देने के लिए ज़ोर देना होता है। कभी कोमल भावनाओं को प्रदर्शित या व्यक्त करने के लिए ध्वनि को अपेक्षाकृत मुलायम बनाना होता है। इन दोनों प्रकारों का साहित्य और संगीत दोनों में एक समान रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसे दोनों प्रकारों का साहित्य और संगीत दोनों में एक समान रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसे साहित्य में डराने के भाव को कठोर शब्दों से, वैसे ही संगीत में स्वर को बुलन्द करके या वाद्य में जोरदार प्रहार करके प्रदर्शित करते हैं। मधुरता के लिए कोमल भाव से शब्दों या स्वरों की सहायता से काकु के सहारे भाव व्यक्त किए जाते हैं।

4.12 तान

तान शब्द का अर्थ है बढ़ाना या फैलाना। दूसरे अर्थों में इसको विस्तार भी कहा जा सकता है क्योंकि इसके द्वारा राग वाचक स्वर समूहों का द्रुत लय में अखंडित रुप में उच्चारण किया जाता है। किसी भी राग में तान उच्चारण करने के लिए उस राग के वादी–संवादी, आरोह–अवरोह और वर्जित स्वर, राग का विशेष चलन आदि की तरफ विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इन तत्वों का ध्यान तो आलाप बंदिश में भी रखना पड़ता है परन्तु तानों में विशेष नियमों का पालन करते हुए विभिन्न लयकारियां, जिससे सुन्दरता, विचित्रता आदि पैदा होती है, का विशेष महत्व दिखलाया जाता है।

तानों का प्रयोग ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गायन–शैलियों में ही किया जाता है। ध्रुपद में तानों का प्रयोग नहीं किया जाता। ध्रुपद के तीसरे और चौथे चरण में नोम–तोम के आलाप में केवल गमक तान का ही प्रयोग किया जाता है और तानों का प्रयोग ध्रुपद में नहीं होता।

तानों के प्रकार – तानों के अनेक प्रकार हैं जैसे–अलंकारिक तान, गमक तान, कूट तान, मिश्र तान, छूट तान, जबड़े की तान, फिरत तान, दानेदार तान, हलक तान, झटके की तान, खटके की तान, बोल तान, सपाट तान, टप्पे अंग की तान, मूर्छना की तान, चक्की तान, तलवार की तान, उखाड़–पछाड़ की तान, लड़त तान, पलट तान, सरगम तान, अचरक तान, वक्र तान, सरोक तान आदि।

तान रचना विधि – आरंभिक विद्यार्थी को पहले गुरु के द्वारा सिखाई साधारण तानों का ही प्रयोग करना चाहिए। परन्तु धीरे–धीरे विद्यार्थी को राग के विशेष चलन, तानों के उचित नियमों के प्रयोग के बारे में जानकारी हो जाती है तो वह तानों की रचना स्वयं भी कर सकता है। तानों में लयकारी का विशेष महत्व है।

उत्तम तानों के सिद्धांत – आरंभिक विद्यार्थी को पहले चार वर्णो(स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण, संचारी वर्ण) के अलंकारों का अभ्यास होना चाहिए ताकि विद्यार्थी का गला स्वरों के उचित स्थान के उच्चारण में पक्का हो सके। इन अलंकारों को पहले ठाह लय में, फिर दुगुन और चौगुन, अठगुन लय में करवाया जाए।

आरंभ में केवल छोटी–छोटी तानों का ही अभ्यास कराया जाए। बाद में बड़ी तानें विद्यार्थी अपने आप गाने में समर्थ हो जाता है। तान का अभ्यास पहले कम लय में किया जाए ताकि स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग हो सके। तानों की संख्या तब ही बढ़ाई जाए जब पहली तानों पर पूरा अभ्यास हो जाए। अभ्यास के लिए अर्थात् गले की विशेष हरकत के लिए सपाट तान का अपना अलग ही योगदान होता है। अवरोहात्मक क्रम में सपाट स्वरों का उच्चारण मुश्किल लगता है क्योंकि इस क्रम में कंठ पर काबू तब ही हो सकता है जब स्वरों का पूर्ण ज्ञान हो। ऐसी तानों में लयकारी धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए और साथ ही साथ सपाट स्वरों का अभ्यास मध्य षड्ज से लेकर तार सां तक न किया जाए बल्कि पहले सा से लेकर म तक एक पड़ाव देकर अभ्यास करने के बाद तार षड्ज तक पहुंचा जाए।

तान का अभ्यास करते समय षड्ज या राग में लगने वाले विशेष आरंभिक स्वर जैसे कल्याण में नि आदि से न किया जाए बल्कि ऋषभ से लेकर तार सप्तक के ऋषभ तक, गंधार से लेकर तार सप्तक के गंधार तक इत्यादि तानों का अभ्यास किया जाए, जिससे विद्यार्थी को स्वरों

का बहुत पक्का अभ्यास हो जाएगा। इससे उसको किसी भी स्वर को सा मानकर गाने का अभ्यास हो जाएगा। मूर्च्छना पद्धति में भी ऐसा होता है। जब विद्यार्थी किसी भी स्वर को सा मानकर आरोह–अवरोह करेगा तब स्वरों के स्थानों में अंतर आना स्वाभाविक है। चाहे उसने उच्चारण तो सा रे ग म प ध नि आदि का ही किया है परन्तु हर बार षड्ज बदलने से मूल स्वर समूह में अंतर आ जाएगा। जिससे विभिन्न स्वरों के उच्चारण में फिर कोई मुश्किल नहीं आएगी।

आरंभ में ऐसे रागों की तानें करवानी चाहिए जिनमें शुद्ध स्वर प्रयोग हो, जिनका चलन सरल और सीधा हो और जिनमें संवाद ज्यादा हो। जैसे कल्याण राग इत्यादि इसमें तीव्र मध्यम के अलावा बाकी सभी स्वर शुद्ध लगते हैं और इसका चलन भी सीधा है। ऐसे रागों में तानों की तैयारी के बाद फिर किसी और राग की तानें की जाए। पहले वक्र जाति वाली रागों की तानों की तैयारी न की जाए। पहले औड़व जाति के सरल रागों की तानें जैसे भूपाली, देशकार इत्यादि रागों में ही उच्चारी जाए क्योंकि शुद्ध स्वरों पर काबू के बाद ही कोमल स्वर उच्चारण में सफलता मिलेगी। बोल तानों को गाने के लिए पहले बंदिश के बोलों का अभ्यास सरगम पर ही किया जाए बाद में बंदिश के बोलों की तान अर्थात् बोलतान या आकार के द्वारा तान का अभ्यास किया जाए।

आदत, जिगर, हिसाब वैसे तो इन तीनों का प्रयोग संगीत के हर पहलू में रहता है परन्तु तानों में इस संबंध में विशेष चौकन्ने रहना पड़ता है जैसे विशेष लयकारी के लिए उत्तम अभ्यास अर्थात् आदत, स्वरों और क्रियाओं का उचित प्रयोग अर्थात् जिगर और मात्राओं की विशेष गिनती अर्थात् हिसाब। उत्तम तानों के लिए गायक के विशेष गुण जैसे–बैठने का उचित ढंग, जिससे फेफड़ों में कोई रुकावट न हो और चेहरे पर भाव पेश करने का ढंग आदि होना भी आवश्यक है। स्वर, लय और ताल की विशेष जानकारी आत्मविश्वास आदि तत्वों का ध्यान रखना जरुरी है क्योंकि ऐसे तत्वों के बिना तानों का उचित रुप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, जिसके फलस्वरुप गायक अपने गायन से इसकी उत्पत्ति करने में असमर्थ हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. मार्गी संगीत के विषय में संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. वाग्गेयकार के गुणों का वर्णन संक्षेप में कीजिए।
3. भारतीय संगीत में काकु से आप क्या समझते हो? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. रागों के चलन में तिरोभाव एवं आविर्भाव का क्या महत्व है?बताइए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. गान लोक रूचि के अनुसार न होकर मोक्ष प्राप्ति का साधन था।
2. देशी संगीत का मूल उद्देश्य लोकरंजनकारी रहा है।
3. संगीत रत्नाकर में 6 प्रकार के काकुओं का वर्णन मिलता है।
4. तिरोभाव की क्रिया समप्रकृति रागों को छोड़ अन्य रागों में की जाती है।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. ध्रुपद गायन में स्वरों को आन्दोलित करते हुए _____तानों का प्रयोग होता है।
2. निबद्ध गान में वे संगीतमयी रचनाएं आती है जो _____बद्ध होती हैं।
3. मो0 करम इमाम ने अपने ग्रंथ में नायकों की संख्या_____मानी है।
4. मार्गी संगीत का मुख्य उद्देश्य _____प्राप्ति रहा है।

4.13 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के सैद्धान्तिक पक्षों जैसे मार्गी संगीत, देशी संगीत, गन्धर्व, गान, वाग्गेयकार, पण्डित, कलावन्त, नायक, गायक, गीत, तिरोभाव, अविर्भाव, काकु और तान के बारे में जान चुके होंगे। संगीत एवं धर्म का आरम्भ से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। संगीत की दो धाराओं मोक्ष प्राप्ति एवं लोक मनोरंजनकारी क्रमशः मार्गी एवं देशी संगीत के रूप में कालान्तर से भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में प्रचलन में रही है। मार्गी संगीत की तुलना पहाड़ी देशों में उन्मुक्त रूप से बहते हुए झरनों से की जा सकती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा का निर्वाह करते हुए गायक, नायक, वाग्गेयकार, पंडित, कलावन्त आदि ने

प्रत्येक काल में इस कला को समृद्ध करते हुए अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन किया है। इनमें वाग्गेयकार सम्पूर्ण रूप से कला निष्णात होते रहे हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग विचिल अमूल्य देन है। राग का मूल उद्देश्य रंजकता उत्पन्न करना है। रंजकता वह है जो आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करे। राग में आलाप–ताल एवं आविर्भाव तथा तिरोभाव के प्रयोग एवं क्रियाओं द्वारा राग की सुन्दरता और रंजकता का संचार किया जाता है। ताल द्वारा राग में एक चमत्कार उत्पन्न भी होता है। वर्तमान में राग में आविर्भाव व तिरोभाव एक अनिवार्य क्रिया बनती जा रही है तथा आलाप प्रधान संगीत ताल प्रधान संगीत के रूप में विकसित होता जा रहा है। इसी शब्दों में कह सकते हैं कि जन रूचि परिवर्तित हो गई है। समय के साथ संगीत के विभिन्न पक्षों में बदलाव आया तथा गायकी परिवर्तित होती गई।

4.14 शब्दावली

1. **श्रुति** – कानों से सुनी जा सकने वाली सूक्ष्म ध्वनि।
2. **मूर्च्छना** – सप्तक में क्रमानुसार पॉच, छः या सात स्वरों का विशेष क्रमयुक्त प्रयोग मूर्च्छना कहलाता है।
3. **गमक** – आन्दोलित बलयुक्त स्वर का प्रयोग।
4. **जाति गान** – ध्रुपद व प्रबन्ध गायन के पूर्व एक प्राचीन गान प्रकार।
5. **ग्रह एवं अंश स्वर** – संगीत रचना का सबसे प्रारम्भिक स्वर ग्रह स्वर है तथा इसके पश्चात महत्वपूर्ण स्वर अंश स्वर है।
6. **खटका** – किसी स्वर को पास वाले दूसरे स्वर से अल्प स्पर्श यदि जोरदार विधि से हो तो वह खटका कहलाता है।
7. **मुर्की** – स्वरों का छोटा सा समूह जिससे तेज गति से लिया जाता है उसे मुर्की कहते हैं।
8. **अलंकार** – स्वरों का ऐसा समूह जो गीत को रंजकता प्रदान करता है।
9. **आलाप** – स्वरों द्वारा आकार में विस्तार करना जिससे राग का विस्तार होता है।

4.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. गमक 2. ताल 3. 12 4. मोक्ष

4.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौर, डॉ0 भगवन्त, *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत*, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. सर्राफ, डॉ0 रमा, (2004), *भारतीय संगीत सरिता*, कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।
3. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
4. राजन, डा0 रेणु, (2010) भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. भातखण्डे, विष्णु नारायण, (1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

4.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्रीः

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति, (1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, (1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

4.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रागों में आविर्भाव, तिरोभाव के प्रयोग के महत्व को समझाते हुए विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. मार्गी एवं देशी संगीत की व्याख्या करते हुए विस्तार पूर्वक इनकी विशेषताओं को समझाइए।

इकाई 1 – स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली; पाठ्यक्रम के रागों का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 स्वर वाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली
1.4 राग मियाँ मल्हार
1.4.1 परिचय
1.4.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.4.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.5 राग मालकौंस – पूर्ण वर्णन
1.5.1 परिचय
1.5.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.5.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.6 राग मुल्तानी
1.6.1 परिचय
1.6.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.6.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.7 राग तोड़ी
1.7.1 परिचय
1.7.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.7.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.8 राग दरबारी
1.8.1 परिचय
1.8.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.8.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.9 राग बसन्त
1.9.1 परिचय
1.9.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.9.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.10 राग परज
1.10.1 परिचय
1.10.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.10.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.11 राग शंकरा
1.11.1 परिचय
1.11.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
1.11.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
1.12 सारांश
1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के इतिहास(मध्यकाल के उपरान्त से आधुनिक काल तक) तथा थाट पद्धति के बारे में जान चुके होंगे। आप श्रुति एवं सांगीतिक शब्दों से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में आपको स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के बारे में बताया गया है। इसमें पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण वर्णन दिया गया है जिससे आप रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त करेंगे। राग में प्रयोग होने वाली मुख्य स्वर संगतियाँ जिनसे राग की स्थापना की जाती है, इस इकाई के माध्यम से आप उनको भी जानेंगे। चलन एवं अंग के आधार पर राग एक दूसरे से मिलते हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के विषय में जान सकेंगे। आप अपने पाठ्यक्रम के रागों को समझ सकेंगे और मिलते–जुलते रागों का अध्ययन कर एक दूसरे से अलग कर समझ सकेंगे, जो आपको रागों का सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत करने में सहायक होगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप रागों का क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुतीकरण सफलता पूर्वक कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के विषय में जान सकेंगे।
2. पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. स्वर समूह द्वारा रागों को पहचान सकेंगे।
4. रागों को एक दूसरे से पृथक कर पाएंगे।
5. रागों की सैद्धान्तिक व्याख्या एवं क्रियात्मक स्वरूप का सुन्दर तथा सफल प्रस्तुतीकरण कर सकेंगे।

1.3 स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली

विद्यार्थियों के संज्ञान के लिए यह बात जानना अति आवश्यक है कि प्राचीन काल में वादन का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था और वादन हमेशा गायन का अनुकरण ही करता था, अर्थात गायन की संगति के लिए ही वादन का प्रयोग होता था। वादक, गायक का अनुसरण करते हुए वाद्य पर भी वही धुन बजाते थे। धीरे–धीरे वाद्यों का स्वतन्त्र वादन प्रारम्भ हुआ परन्तु वादक अभी भी गायन का अनुसरण करते हुए बंदिश, गीत आदि का ही वादन किया करते थे। यही पद्धति आगे चलकर गायकी अंग का वादन कहलाई। तत्पश्चात वाद्यों पर बजाने के लिए गतकारी या तंत्रकारी पद्धति का विकास हुआ। वैदिक काल में गायन के साथ वीणा वादन होता था। प्राचीन काल में सभी प्रकार के तत् वाद्यों के लिए वीणा संज्ञा प्रचलित थी और वीणा वादन हमेशा गायन के अनुकरण में ही होता था। आज वादन की दो पद्धतियाँ प्रचार में है जो निम्नलिखित हैं :–

1. गायकी अंग – प्रचलित तत् वाद्यों में सितार त्रितंत्री वीणा का ही विकसित रुप है। अपने विकास के प्रारम्भिक दिनों में सितार का प्रयोग गान के लिए ही होता था। 18वीं शाताब्दी में सेनिया घराने के कुछ उस्तादों ने अपने खानदान के बाहर के लोगों को शिक्षा देने के लिए अन्य वाद्यों को भी अपनाया। इससे सितार और सुरबहार को बढ़ावा मिला। वीणा का आलाप अंग सुरबहार और गीत अंग सितार पर बजने लगा। सिखाने वाले उस्ताद, गायक होने को कारण गायकी को ही प्रमुख स्थान देते थे तथा उन्होंने वादन में भी इसी अंग को स्थान दिया। **हमारे** संगीत की प्राचीन शैली ध्रुवपद में गायन के अभ्यासपूर्ण प्रत्येक स्वर की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। स्वर को यथोचित स्थान पर लगाना ही परमावश्यक होता है। वादन में भी उसी तरह स्वर का महत्व है। चूंकि हमारे कण्ठ स्थिति स्वर–यंत्र प्रकृति प्रदत्त होता है, उस का प्रयोग भी आघात जनित है। अर्थात् कण्ठ से जो स्वर उत्पन्न होता है वह हमारे शारीरिक प्रयास से ही होता है। वादन में हम उसे आघात, मिजराब या अन्य प्रकार की व्यवस्था से उत्पन्न करते हैं

इसलिए यदि कहा जाए कि कण्ठ स्वर या गायन का ही अनुसरण हम वादन में करते हैं तो यह असत्य न होगा। ध्रुपद में वीणा व अन्य वाद्यों की संगति में यही किया जाता रहा है। गायन की विशेषता को ही वादन में अवतरित करना ही गायकी है। किसी भी वाद्य में वादन के समय वादक गायन की महत्त्वपूर्ण स्वर–संगतियों का ही अनुसरण करता है जो उसकी सूझ–बूझ व अभ्यास तथा चिंतन पर आधारित होता है। मिजराब के आघात पर ही वह मधुरता व आदत्त, जिगर, हिसाब की पूर्णता को प्रस्तुत करता है। एकल सितार वादन या अन्य वाद्य के वादन में उक्त तथ्यों का होना आवश्यक है।

कंठ संगीत को सर्वोपरि स्थान देते हुए वादकों ने भी गायन की परम्परा का निर्वहन किया। या यूँ कहिए कि जितने भी प्रसिद्ध वादक हुए वे सभी गायन में भी पूर्ण पारंगत होने के कारण गायन का अनुसरण ही वाद्य पर करते थे। इसी के चलते गायकी अंग से वादन का विकास हुआ। उ0 विलायत खां व उनके शिष्य परम्परा में गायकी अंग का सितार ही बजाया जाता है।

2. गतकारी या तंत्रकारी अंग – गायकी अंग को पूर्ण रुप से सितार व अन्य वाद्यों पर बजाना संतोषप्रद सिद्ध न हो सका और सेनिया घराने ने वादन की नई शैली 'गत' का आविष्कार किया। गत की बंदिश मूलतः गान की शैलियों से प्रभावित थी, किन्तु मिजराब के विशेष प्रयोगों के कारण गत की रचना गान से भिन्नतः प्रयोग होने लगी। तंत्र के लिए उपयुक्त गत शैली का निर्माण का श्रेय सेनी घराने के उस्तादों को देते हैं। गतों के निर्माणकर्त्ताओं में निहाल पुत्र अमीर खां एवं मसीत खां के नाम से क्रमशः अमीरखानी एवं मसीतखानी का प्रचलन हुआ। इनके शिष्य बरकत उल्ला खां, बहादुर खां एवं गुलाम रजा खां सेनी घराने के थे, जिन के नाम पर रजाखानी गत का प्रचार हुआ। सितार व अन्य तत् वाद्यो में दो प्रकार की गतों का प्रचलन शुरू हुआ, जिन्हें हम वादन शैली या बाज भी कह सकते हैं। इस प्रकार दो प्रकार की गतों का विकास हुआ – मसीतखानी और रज़ाखानी गत।

हर वाद्य का अपना एक चरित्र होता है। चरित्र से तात्पर्य है उस वाद्य की बनावट, गूँज(आस), आघात की मात्रा तथा टोनल क्वालिटी(स्वर की यथोचित मधुर ध्वनि)। इनका अध्ययन कर तंत्र में प्रयोग करने की दृष्टि से 'गतकारी' शब्द का प्रचलन हुआ। इस शैली में उन सभी बातों का ध्यान रखा जाता है जो हमारी ध्रुवपद शैली में निहित है। आज भी वादन में विस्तृत आलाप, लयबद्ध आलाप, द्रुत लय में आलाप प्रस्तुत किया जाता, तत्पश्चात् गतें बजाई जाती हैं। गायन की शब्द रचना(बन्दिशों) को हू–ब–हू अर्थात् पूर्णतः वादन में प्रस्तुत किया जाता है। संतोषजनक न होने पर विद्वानों ने राग व ताल में बंधी हुई मिजराब के आघातों को पूरी तरह ध्यान देते हुए 'गतों' का प्रचार किया और जो कलान्तर में लोकप्रिय हुई। आज वादक इन्हीं गतों के आधार पर वादक अपनी वादन कला का प्रदर्शन करते हैं। गतों में विलम्बित गत के दौरान चैनदारी, लयकारी, विभिन्न कर्णप्रिय छन्दों युक्त स्वर–संगतियों का प्रयोग यथा स्थान किया जाता है। केवल स्वरों द्वारा भावाभिव्यक्ति का प्रयास किया जाता है जो वास्तव में कठिन साधना व चिंतन द्वारा ही सम्भव होता है।

गत की परिभाषा – किसी भी वाद्य यन्त्र पर बजाई जाने वाली राग–ताल बद्ध सुमधुर रचनाएं गत कहलाती हैं। तत् वाद्यों पर बजाई जाने वाली गतों के मुख्य दो प्रकार होते हैं :–

1. **मसीतखानी गत** **2. रज़ाखानी गत**

प्रत्येक गत के दो चरण होते है। पहले चरण को स्थाई और दूसरे को अंतरा कहते हैं।

1. मसीतखानी गत – तंत्रकारों ने ख्याल शैली के विलम्बित ख्याल के समान ही मसीतखानी गत को विलम्बित के रुप में और रजाखानी गत को ख्याल शैली के द्रुत ख्याल समान द्रुत के रुप में प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया। आज के विद्यार्थी के लिए मसीतखानी का अर्थ विलम्बित गत ही है। यह तीनताल में ही बजाई जाती है। कुछ श्रेष्ठ कलाकारों ने तीनताल के स्थान पर इसे रुपक, झपताल आदि में भी बजाना शुरु किया है। इन तालों में गतें बजाने के लिए ताल के अनुसार मिज़राब के सीधे बोल प्रयुक्त किए जाते हैं। उदाहरणस्वरुप रुपक के लिए ''दारा दारा दा दारा', झपताल के लिए ''दारा दा दारा दारा दा दारा'' आदि। मसीतखानी गत की विशेषता उसकी विलम्बित लय है, जिस पर बीन का स्पष्ट प्रभाव है। जयपुर के मसीत खाँ इसके आविष्कर्ता माने

जाते हैं। इस गत की रचना में दिर, दा, दिर दारा दा दारा, इस क्रम में बोलों की रचना होनी चाहिए।

मसीतखानी गत में जोड़, आलाप, मीड़, गमक आदि विभिन्न प्रकार की अलंकारिक तानों का विशेषतः प्रदर्शन किया जाता है। मसीत खाँ साहब ने तीनताल में 12 वीं मात्रा से गत का प्रारंभ कर बोलों का इस प्रकार प्रयोग किया – **दिर दा दिर दा रा दा दा रा**, पुनः इन्हीं बोलों को दुबारा बजाया जाता है। इस तरह 8 मात्राओं के बोल समूह को दोबारा बजाने से उस्ताद मसीत खाँ ने इस लोकप्रिय 'गत' को प्रचलित किया। इस गत का प्रयोग प्रायः तत वाद्यों यथा सितार, सरोद आदि में आज भी सुन्दर ढंग से किया जा रहा है। विलम्बित गत का पर्याय मसीतखानी गत से है।

2. रजाखानी गत – रजाखानी गत का अभिप्राय आज द्रुत गत से ही लिया जाता है। इसमें भी तीनताल का ही प्रयोग होता रहा है। मसीतखानी के समान इसमें भी नई तालों का प्रवेश हुआ है। जौनपुर के रजा खाँ मसीत खाँ के शागिर्द थे, जिन्होंने रज़ाखनी गत का आविष्कार किया। इसमें द्रुतलय में गत तथा तोड़े बजाए जाते हैं। रज़ाखानी में गतकारी, चिकारी तथा विभिन्न प्रकार के ''झाला'' का प्रदर्शन किया जाता है। आज सभी कलाकार मसीतखानी और रज़ाखानी गत एक साथ बजाते हैं।

बाज – विभिन्न प्रकार से मिजराब के बोलों को सितार पर कलात्मक ढ़ंग से बजाने को बाज कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ ''सितार बजाने की विशिष्ट शैली'' से होता है। बाज प्रमुखतः दो प्रकार के होते हैं :–

1. दिल्ली बाज – इसे पश्चिमी बाज भी कहते हैं। इसमें मसीतखानी गतें बजाई जाती हैं। लय इसमें विलम्बित रखी जाती है, तथा गायकी ढ़ंग से आलाप, मींड, जमजमा, मुर्की आदि गमकों का खूब प्रयोग होता है तथा इसमें विभिन्न लयों की तालों का प्रयोग किया जाता है।

2. गुलाम रज़ा बाज अथवा पूर्वी बाज – इसमें द्रुत लय की प्रधानता होती है, जिसे रज़ाखानी कहते हैं। इसमें तैयारी के साथ कलात्मक ढ़ंग से तोड़े व झाले बजाए जाते हैं और अन्त में लय बहुत तेज कर देते हैं। साधारणतया इसे लखनऊ बाज भी कहते हैं, क्योंकि गुलाम रज़ा खान, जिन्होंने इस प्रकार की शैली का शुभारम्भ किया था, वे लखनऊ के निवासी थे।

जब बाज को व्यापक अर्थ में लेते हैं तो इसके अन्तर्गत सितार बजाने की विविध शैलियां और उनके विस्तार आ जाते हैं। इस प्रकार विविध वादकों की शैली की विविधता से विविध बाज भी बन जाते हैं। केवल लय व बोलों के अन्तर से ही बाज का भेद मानना पर्याप्त नहीं है। मसीतखानी व रज़ाखानी गतों को ही अलग–अलग वादक अपने विशिष्ट ढ़ंग से बजा सकते हैं। लेकिन इस प्रकार की विभिन्न शैलियों को घराने के नाम से जाना जाता है।

1.4 राग मियाँ मल्हार

1.4.1 परिचय :–

मियाँ मल्हार इति विदितो यस्तु कर्णाटमिश्रः।
षाड्जो वादी रूचिर इह संवादिना पंचमेन।।
गांधारस्य स्फुटविलसदांदोलनं निद्वयं च।
प्रच्छन्नो धो विलसति सदा मध्यमाद्रौ प्रपातः।। कल्पद्रुमांकरे

'गा कोमल संवाद म–स, उतरत धैवत आर
दोउ निषाद के रूप ले, कहि मियाँ मल्हार'

मियाँ मल्हार राग काफी थाट जन्य राग है। कुछ विद्वान इसका वादी सा तथा सम्वादी 'प' मानते हैं तो कोई इसका वादी 'म' तथा सम्वादी सा मानते हैं। परन्तु शास्त्रोक्तानुसार दूसरा मत अधिक प्रचलित है। इसके आरोह में सात तथा अवरोह में धैवत वर्जित होने के कारण इसकी जाति सम्पूर्ण–षाड़व मानी जाती है। इस राग को वर्षा ऋतु में अधिक गाया–बजाया जाता है इसलिए इस राग को मौसमी राग की संज्ञा दी जाती है। शास्त्र नियमानुसार इस राग का गायन समय

मध्यरात्रि माना जाता है। कानड़ा एवं मल्हार इन दो रागों का इसमें सुन्दर सामंजस्य है। इस राग में – रे म रे सा, नि़ प़, म़ प़, नि़ ध़, नि़ सा, म रे प, नि़ ध, नि सां, प ग़ म रे सा – यह भाग बार–बार प्रयोग किया जाता है और इन्हीं स्वर समुदायों द्वारा इस राग की पहचान होती है। इस राग में कोमल गंधार तथा दोनों निषादों(कोमल एवं शुद्ध) का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी दोनों निषादों का प्रयोग भी गायक–वादक एक के बाद एक करके भी राग हाँनि नहीं होने देते हैं और जो सुनने में भी सुन्दर प्रतीत होता है। इसका आलाप जब विलम्बित लय में करके उसका विस्तार मन्द्र स्थान पर होता है तब यह सुन्दर एवं कर्णप्रिय लगता है।

इस राग का आलाप मन्द्र एवं मध्य सप्तक में अधिक किया जाता है। गौड़ मल्हार में जिस प्रकार सां, ध प, ध सां, ध प – यह प्रयोग क्षम्य है और कुछ अंशों में राग वाचक भी है, उस प्रकार का प्रयोग इस राग में नहीं है। यह राग सर्वप्रथम मियाँ तानसेन द्वारा प्रचलित हुआ और अकबर बादशाह ने इसे बहुत पसन्द किया ऐसा मान्य है। यह अत्यधिक मधुर एवं लोकप्रिय राग है।

आरोह	–	रे म रे सा, म रे, प, नि़ ध, नि सां।
अवरोह	–	सां नि़ प, म प , ग़ म, रे सा।।
पकड़	–	रे म रे सा, नि़ प़, म़ प़, नि़ ध़, नि़ सा, प, ग़ म रे सा।
न्यास के स्वर	–	ग़, प, शुद्ध नि
समप्रकृति राग	–	बहार

1.4.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. सा रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़, नि़ सा, नि़ सा रे सा नि़ प़, म़ प़ नि़ ध़ नि़ सा, नि़ सा रे म रे सा।
2. नि़ सा रे, सा रे प ग़, म रे सा, नि़ ध़ नि़ सा रे सा, प ग़, म रे सा।
3. म रे प, म प, नि़ ध, नि़ ध, नि़ म प, नि़ नि़ प म प, ग़, म रे सा ध़ नि़ म़ प़, नि़ ध़, सा नि़ ध़, सा नि़, रे सा।
4. म प, नि़ ध, नि़ ध, नि सां, सां रें सां, ध नि़ म प, नि़ ध नि सां।
5. नि सां रें मं रें सां, नि़ प, नि़ नि़ प म, प ध नि सां नि़ प ग़, म रे सा नि़ ध़ नि़ ध़ नि़ सा रे सा।

1.4.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा, नि़ ध़, नि़ ध़ नि़ सा, रे सा।
2. म रे प, म प नि़ ध नि़ म प, ग़ म रे सा।
3. नि़ सा रे म रे सा, नि़ प़, नि़ ध़ नि़ सा।
4. म प नि़ ध, नि़ ध, नि सां, ध नि़ म प।
5. नि सां रें, सां रें पं गं़, मं रें सां, नि़ ध नि सां।

1.5 राग मालकौंस

1.5.1 परिचय :–

कोमल सब पंचम रिखब, दोऊ बरजित कीन्ह ।
स–म संवादिवादिते, मालकंस को चीन्ह ।। (रागचन्द्रिकासार)

उपरोक्त लिखे दोहे में पंचम ऋखब को वर्जित एवं स–म के सम्वाद द्वारा मालकौंस राग का स्वरूप दिया गया है। मालकौंस राग भैरवी थाट का राग है, इसके आरोह तथा अवरोह में ऋषभ तथा पंचम स्वर वर्जित है इसलिए इसकी जाति औड़व–औड़व है। इस राग का वादी स्वर मध्यम तथा सम्वादी षड़ज है। इस राग का गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। इस राग में ग, ध, नि स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। यह गम्भीर प्रकृति का अत्यन्त लोकप्रिय एवं मधुर

राग है। बहुत से गायक–वादक कलाकारों का कहना है कि यह आसावरी थाट का राग है परन्तु प्रचार में भैरवी थाट ही सर्वमान्य है। कभी–कभी ऋषभ का प्रयोग विवादी स्वर के नाते अनुचित नहीं होगा। इस राग में विलम्बित ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराना सभी गाए जाते हैं। निषाद के अतिरिक्त इसके सभी स्वरों पर न्यास सम्भव है।

आरोह – नि सा ग म, ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध म, ग म ग सा।।
पकड़ – म ग, म ध नि ध, म, ग सा ।
न्यास के स्वर – ग, म ध ।
समप्र कृति राग– चन्द्रकौंस

1.5.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. नि सा ध नि सा
2. सा नि ध, म ध नि सा ।
3. ध नि सा म, म ग सा ।

1.5.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. नि सा ग सा, ध नि सा।
2. नि सा नि ग, सा ग म।
3. ग म ध म, ग म ग सा।
4. नि सा ग म ध, म, ग म सा।
5. ग म ध नि ध म, ध म ग म ग सा।
6. गम धनि सां, सां नि ध नि सां, गं सा।
7. नि सा ग म ग, सां, ध नि सा नि सा।

1.6 राग मुल्तानी

1.6.1 परिचय :–

तीवर मनि कोमल रिगध, आरोहत रिध हानि।
पसा वादी–सम्वादी ते, गुनि गावत मुल्तानी।। (रागचन्द्रिकासार)

कोमला रिधगा यत्र वादि संवादिनौ पसौ।
आरोहे रिधहीना सा मूलतान्यपराण्हगा।। (चन्द्रिकायाम)

मुल्तानी राग की उत्पत्ति तोड़ी थाट से मानी गई है। इस राग में रे, ग, ध स्वर कोमल तथा म स्वर तीव्र प्रयुक्त होता है। इसमें वादी पंचम तथा सम्वादी षडज है। आरोह में रे–ध स्वर वर्जित तथा अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किए जाते हैं इसलिए इस राग की जाति औड़व–सम्पूर्ण है। इसका गायन समय दिन का चौथा प्रहर मान्य है। इस राग में ऋृषभ, गंधार एवं धैवत स्वरों का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया जाता है, क्योंकि इन स्वरों के प्रयोग में असावधानी होने के कारण इस राग में श्रोताओं को कभी–कभी तोड़ी राग का आभास होना सम्भव है। मुल्तानी में मध्यम तथा गंधार स्वरों की संगति व पुनरावृत्ति होती है। इस राग को 'परमेल प्रवेशक' राग मानते हैं क्योंकि यह तोड़ी थाट से पूर्वी थाट के रागों में प्रवेश कराता है। तोड़ी के गंधार को कोमल के स्थान पर शुद्ध करें तो पूर्वी थाट हो जाएगा। मुल्तानी गाने में सा, प, नि यह न्यास के स्थान माने जाते हैं तथा भिन्न–भिन्न प्रकार की तानें इन स्वरों पर समाप्त की जाती हैं। कुछ संस्कृत ग्रन्थों में मुल्तानी राग में गंधार तीव्र बताया गया है किन्तु प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में कोमल गंधार ही माना जाता है। राग मुल्तानी एवं तोड़ी समीप के राग हैं। मुल्तानी के अवरोह में

ऋृषभ–धैवत की मात्रा अधिक होने से तोड़ी की छाया आने लगती है, इसलिए कुछ विद्वान जैसे बिहाग के अवरोह में ऋृषभ और धैवत कम रखते हैं, उसी प्रकार मुल्तानी के अवरोह में भी रखते हैं। जहाँ तोड़ी में सा रे ग, प्रयोग करते हैं तो मुल्तानी में नि़ सा ग अथवा नि़ सा[मं] ग स्वर का प्रयोग करते हैं। इससे राग का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

आरोह	–	नि़ सा, ग मं प, नि सां।
अवरोह	–	सां नि ध प, मं ग, रे सा।
पकड़	–	नि़ सा, मं ग, प ग, रे सा।
न्यास के स्वर	–	सा, प, नि।
समप्रकृति राग	–	तोड़ी

1.6.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. नि़ सा, ग रे सा, नि़ सा, नि़ ध़ प़, मं प, नि़, प़ नि़ सा, नि़ सा, ग रे सा।
2. नि़ सा, मं ग, मं ग रे सा, ग मं प, ग, मं ग रे सा, प़ नि़ सा।
3. नि़ सा रे सा, ग रे सा, मं ग रे सा, नि़ सा ग मं प, ग, मं ग रे सा।
4. नि़ सा, मं ग प, मं प ध प, मं ग, प ग, रे सा, नि़, सा ग रे सा।
5. ग मं प नि ध प, मं प ग, ग मं प नि, ध प मं प ग, प ग, प, ग रे सा।
6. नि़ सा ग मं प, ग मं प, नि, सां, प नि सां, गं रें सां, नि सां मं गं, रें सां।
7. नि सां रें, नि ध प, मं प ध प, ग, मं ग प ग, मं ग रे सा, प़ नि़ सा, ग रे सा।।

1.6.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. नि़ सा ग मं, प, ग, रे सा।
2. नि़ सा मं ग, प, ग रे सा।
3. मं प ध प, ग, ग मं प, नि ध प।
4. नि सां रें सां, नि ध प, ग मं प नि, सां, गं रे सां।
5. ग मं प, ग रे सा, प़ नि़ सा मं ग रे सा।

1.7 राग तोड़ी

1.7.1 परिचय :–

तीखे मनि कोमल रिगध वादी धैवत साज।
संवादी गंधार है, टोड़ी राग बिराज।। चंद्रिकासार

यह राग तोड़ी थाट से उत्पन्न माना जाता है। अतः यह तोड़ी थाट का आश्रय राग है। तथा इसके थाट का नामकरण इसी राग के आधार पर हुआ। इस राग का वादी स्वर धैवत तथा सम्वादी स्वर गन्धार है। इस राग में ऋषभ (रे), गन्धार (ग) तथा धैवत (ध) स्वर कोमल लगते हैं, मध्यम तीव्र प्रयुक्त किया जाता है। आरोह–अवरोह में सातों स्वर प्रयुक्त होते हैं, अतः इस राग की जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण है। पंचम का प्रयोग अल्प करते हैं। आरोह में अधिकतर पंचम को लंघन या वर्जित कर देते हैं तथा अवरोह में भी पंचम अल्प प्रयोग होता है। आरोह–अवरोह दोनों में पंचम वर्जित करने से गुजरी तोड़ी राग हो जाता है। पूर्वांग में गन्धार और उत्तरांग में धैवत पर न्यास करते हैं। इस राग को गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है। तोड़ी उत्तरांग वादी है तथा दिन के उत्तर अंग में अर्थात 12 बजे के पूर्व गाए जाने पर भी इसमें मन्द्र सप्तक उतना ही प्रमुख है जितना कि तार तथा मध्य सप्तक। इस राग को मियां तानसेन द्वारा बनाया गया ऐसा माना जाता है, इसलिए इसे मियां की तोड़ी भी कहते हैं। यह गम्भीर प्रकृति का राग है, इसमें विलम्बित व द्रुत ख्याल दोनों शोभा देते हैं। मींड, गमक और कण तीनों इस राग में उपयुक्त बैठते हैं।

आरोह – सा रे॒ ग॒, मं प, ध॒, नि सां
अवरोह – सां नि ध॒, प, मं ग॒, रे॒ सा
पकड़ – ध॒ नि॒ सा रे॒ ग॒, रे॒ ग॒ मं ग॒ रे ग रे सा
न्यास के स्वर – ग, ध
सम्प्रकृति राग – गुजरी तोड़ी

स्वर विस्तार :–

1. सा रे॒ ग॒, रे॒ ग॒ रे॒ सा, (सा) नि॒ ध॒ प मं ध॒ नि॒ सा––– ध॒ ध॒ ग॒ –– रे॒ ग॒ रे॒ सा,
2. सा रे॒ ग॒ मं ग॒ रे॒ ग॒ मं ग॒ रे॒ ग॒ रे॒ – सा सा नि॒ ध॒ – – नि –– सा ग॒ रे॒ सा
3. मं –– प सा रे ग – रे ग मं – ग मं प– प मं ग रे ग॒ – रे॒ ग॒ रे॒ सा
4. सा रे॒ ग॒ मं प – मं ध॒ नि ध – प प मं ध॒ मं ग॒ गं रें सां, (सां) नि ध॒ नि॒ ध॒ प – प मं ध॒ – मं ग॒ रे॒ ग॒ मं ग रे॒ ग॒ रे सा –
5. मं ध॒ सां, नि ध॒ मं ध॒ सां, ध॒ नि सां रें॒ गं॒, रें॒ गं॒ रें॒ सां (सां) नि ध॒ ध॒ गं॒ मं गं॒ रें॒ गं॒ रें॒ सां, (सां) नि ध॒ नि ध॒ प मं ध – मं ग॒ रे॒ ग॒, रे॒ ग॒ रे॒ सा

1.7.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. रे॒ ग॒ – रे॒ ग॒ रे सा (सा) नि॒ ध॒
2. सा रे॒ ग मं ध – – प मं ग॒
3. सां नि ध॒ प मं ध मं ग रे॒ ग॒ रे॒ सा
4. रें॒ ग॒ रें॒ सां (सां) नि ध॒ – – ध गं॒ रे॒ ग॒ रे॒ सा

1.7.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

जैसा कि राग तोड़ी में पहले बताया गया है कि इस राग में रे, ग, ध स्वर कोमल तथा तीव्र मध्यम प्रयुक्त किया जाता है तथा आरोह में पंचम का लंघन किया जाता है या कभी–कभी वर्ज्य भी किया जाता है। अवरोह में भी पंचम का अल्प प्रयोग होता है। इस राग के मुख्य स्वर समूह इस प्रकार हैं, जिनकी सहायता से आप राग पहचान सकेंगे।

1. सा रे॒ ग॒, रे॒ ग, रे॒ – – सा
2. (सा) नि॒ ध॒ प॒ – – ध॒ ग॒ रे ग॒ रे सा
3. मं ध॒ प – मं ध॒ मं ग॒
4. सां नि ध॒, मं ध॒ प – –

1.8 राग दरबारी

1.8.1 परिचय :–

मृदु गमधनि तीखो रिखब अवरोहत ध न लाग।
रि–प वादी–संवादी तें कहत कानड़ा राग।। चन्द्रिकासार

मृदू गनी धमौ रिस्तु तीव्रोंऽशः पसहायकः।
गांधारांदोलनं यत्र कर्णाटः स निशि स्मृतः।। चन्द्रिकायाम

इस राग की उत्पत्ति आसावरी थाट से मानी गई है। इस राग का वादी स्वर ऋृषभ तथा सम्वादी पंचम है। इस राग के आरोह में सातों स्वर एवं अवरोह में छ' स्वरों का प्रयोग होने के कारण इसकी जाति सम्पूर्ण–षाड़व है। यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसका गायन समय मध्य

रात्रि है। इस राग का मुख्य चलन मन्द्र सप्तक तथा मध्य सप्तक में किया जाता है। इस राग के आरोह में गंधार स्वर दुर्बल है। तानों के जल्द व सरल रूप में तो कभी–कभी इसको बिल्कुल छोड़ देते हैं। गंधार स्वर में आन्दोलन इस राग में अत्यधिक विचित्रता पैदा करता है। अवरोह में धैवत को वर्ज्य करते हैं। इस राग को मियाँ तानसेन ने प्रचलित करके अकबर बादशाह को प्रसन्न किया था ऐसा कहा जाता है। इसमें निषाद और पंचम की संगति बहुत सुन्दर लगती है। यह अत्यधिक मधुर राग है। इस राग में ग, ध, नि स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग के समान अड़ाना राग है। दोनों राग आसावरी थाट से हैं किन्तु अड़ाना में दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं–आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद। अवरोह के स्वर दोनों के एक समान हैं परन्तु अड़ाना उत्तरांग प्रधान राग है तथा इसका कोमल गंधार चढ़ा हुआ है। जबकि दरबारी कान्हडा का गंधार श्रुतियों में उतरा है तथा धैवत में आन्दोलित होता है।

आरोह – नि़ सा, रे ग़ रे सा, म प, ध़, नि़ सां।
अवरोह – सां, ध़, नि़, प, म प, ग़, म रे, सा।।
पकड़ – ग़, रे रे, सा, ध़, नि़ सा, रे सा।
न्यास के स्वर – ग, ध, नि।
समप्रकृति राग – अड़ाना।

1.8.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. सा, नि़ सा, रे सा, नि़ सा रे, ध़ नि़ प़, म़ प़ ध़ , नि़ सा, नि़ रे, सा।
2. सा, रे रे सा, नि़ सा रे ध़, नि़ प़, म़ प़ ध़, नि़ सा, ध़ नि़ सा।
3. नि़ सा रे, सा रे, सा ध़, रे सा, सा रे ग़, म रे सा, ध़ नि़ रे सा।
4. म प, ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प, नि़ म प, ग़, म रे सा ध़ नि़ सा।
5. सा नि़ ध़ नि़ सा रे ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प, नि़ नि़ प म प, ग़, म रे सा ध़, नि़ प़, म़ प़ ध़ नि़ सा।
6. म प ध़ नि़ सां, ध़ नि़ रें सां, रें रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, म प, ग़, म रे सा, ध़ नि़ सा रे सा।
7. सां रें ग़ं, मं रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, सां ध़, नि़ प, म प, ग़ म रे सा, ध़ नि़ सा, रे ग़, म रे सा।

1.8.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा, ध़ नि़ सा रे, ग़, म रे सा।
2. म, रेसा ध़ , नि़ , प़, म़ प़ ध़ नि़ सा।
3. म प ध़, नि़ प, नि़ म प ग़, म रे सा।
4. ध़ नि़ सा रे, ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प।
5. सां ध़, नि़ प, म प, ग़ म रे सा।
6. नि़ सा रें, सां रें ग़ं, मं रें सां, ध़ नि़ सां।
7. रें रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, म प ध़ नि़ रें सां।

1.9 राग बसन्त

1.9.1 परिचय :–

दो मध्यम कोमल रिखब, चढत न पंचम कीन्ह।
सम वादी संवादितें, यह बसन्त कह दीन्ह।। चन्द्रिकासार

यह पूर्वी थाट से उत्पन्न राग माना जाता है। इसमें दोनों मध्यम, ऋषभ व धैवत कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध प्रयुक्त होते हैं। आरोह में रे व प स्वर वर्जित तथा अवरोह को सम्पूर्ण रखने से यह राग खिल जाता है। अतः इस राग की जाति औड़व–सम्पूर्ण है। वादी स्वर तार सां तथा

सम्वादी मध्यम है। इसमें मध्यम को ललित अंग से अर्थात दोनों मध्यमों को साथ–साथ लेते हैं– सा म – मं म ग मं ध सां। यह उत्तरांग प्रधान राग है, अतः इसकी बढ़त मध्य सप्तक के उत्तरांग तथा तार सप्तक में होती है। मध्य सप्तक से तार सप्तक को जाते समय कोमल ऋषभ प्रयोग करते हैं– मं ध रें सां, किन्तु मध्य सप्तक के आरोह में ऋषभ का प्रयोग कभी नहीं होता। इसे परज राग से बचाने के लिए आरोह में अधिकतर निषाद लंघन कर जाते हैं। जैसे मं ध सां, मं ध रें सां। इसका गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है, किन्तु बसन्त ऋतु में हर समय गाया जाता है। अतः इसे मौसमी राग कहते हैं।

आरोह	–	सा ग मं ध रें सां
अवरोह	–	रें नि ध प, मं ग, मं ग रे सा
पकड़	–	रे नि ध प, मं ग, मं ग, रे सा मं ध रें सा, रें नि ध प, मं ग मं ऽ ग
न्यास के स्वर	–	ग, प, सां
सम्प्रकृति राग	–	परज, पूर्वी, पूरिया धनाश्री

स्वर विस्तार :–

1. सा, नि सा ग मं – ग मं ध मं ग मं ऽऽ ग मं ग रे सा
2. (नि) सा म – ग मं ध सां, नि ध प (प) मं ग मं ऽ ग मं ध मं ग रे सा
3. मं ध सां (सां) नि ध मं ध नि रें नि ध प मं ध रें सां, रें सां नि ध प मं ध मं ग मं ग रे सा।
4. (प) – मं ग मं ध सां, नि रें सां गं रे सा, नि रें नि ध प मं ध रे सां नि ध प (प) मं ग ग मं ध, मं – ग – मं ग रे सा,

1.9.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. प मं ग मं ऽऽ ग
2. मं ध सां, रें सां
3. रें नि ध प मं ध मं ग मं ऽ ग
4. सा म – मं म ग, मं ध सां

1.9.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा ग, मं ध प – – मं ग
2. मं ध सां नि ध प
3. रें नि ध प मं ग
4. (सां) नि ध प मं ध रें सां

1.10 राग परज

1.10.1 परिचय :–

जहां कोमल धैवत रिखब, तीख गंधार निखाद।
द्वै मध्यममंडित परज, पसा संवादीवाद।। चन्द्रिकासार

इस राग की उत्पत्ति पूर्वी थाठ से मानी जाती है। इसमें रे, ध कोमल तथा दोनों मध्यम प्रयोग किए जाते हैं। अधिकतर तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह में तथा शुद्ध मध्यम का अवरोह में होता है। जैसे – मं ध सां नि ध प मं ग म ग मं ग रे सा। इसका वादी स्वर षडज तथा पंचम संवादी है। इस राग के आरोह में रिषभ स्वर वर्जित होता है तथा अवरोह में सातों स्वर प्रयुक्त होते

हैं। अतः इसकी जाति षाड़व–सम्पूर्ण है। इसकी जाति षाड़व–सम्पूर्ण मानी गई है लेकिन फिर भी कभी–कभी सप्तक के आरोहात्मक स्वरों में ऋषभ प्रयुक्त होता है। नि रें गं रें सां नि ध नि। यह उत्तरांग प्रधान राग है। इसका चलन मध्य सप्तक के उत्तरांग तथा तार सप्तक में होता है। इसकी चाल चपल है, इसलिए लोग इसमें विलम्बित ख्याल बहुत कम गाते हैं। राग परज को परमेल प्रवेशक राग कहा गया है, क्योंकि इसके बाद भैरव थाट के रागों का समय प्रारम्भ होता है। इसमें बसन्त और कलिंगड़ा का मिश्रण है। बसन्त पूर्वी थाट का तथा कलिंगड़ा भैरव थाट का राग है। राग परज, पूर्वी से भैरव थाट के रागों में प्रवेश कराता है। इसका गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है।

आरोह	–	नि सा ग मं प ध प, मं ध नि सां
अवरोह	–	सां नि ध प, मं प ध प ग म ग, मं ग रे सा
पकड़	–	सां नि ध प, मं प ध प, ग म ग
न्यास के स्वर	–	ग प नि और सां
सम्प्रकृति राग	–	कलिंगड़ा और बसन्त

स्वर विस्तार :–

1. सा, नि सा ग, मं ध नि ऽ ध प मं प ध प ऽ ग म ग, मं ग रे सा।
2. नि सा, ग ऽ मं ध नि ऽ सां, सां रें सां, नि ध नि मं ध नि सां, (सां) नि ध – प मं प ग म ग, मं ग रे सा।
3. मं ध – नि सां, निसांनि नि ध प, प मं ध प मं प ग म ग, मं ग रे सा,
4. सां नि ध नि रें नि ध प मं ध नि सां नि रें ग ऽ रे सां, सां नि ध नि – – मं ध (सां) नि ध नि ध – – प, (प) मं ग म ग, मं ग रे सा।

1.10.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. ध प – ग म ग मं ग रे सा।
2. मं ध नि सां – नि ध नि।
3. सां रें सा रें, नि सां नि ध नि
4. नि ध प, मं प ध प, ग म ग।

1.10.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. नि सा ग मं ध नी – – ध प।
2. मं ध नि सां नि(सां) नि, नि ध प।
3. सां रे नि सां नि ध प, ग म ग।
4. ग मं ध नि – – नि ध प, ग म ग।

1.11 राग शंकरा

1.11.1 परिचय :–

थाट बिलावल प स संवाद, औडव–षाडव रूप।
मध्यम वर्जित मध्य रात्रि, श ंकरा राग अनूप ।।

यह बिलावल थाट का राग माना जाता है। इसमें आरोह में मध्यम और अवरोह में मध्यम व ऋषभ वर्जित है। यह औड़व–षाड़व जाति का राग है। शंकरा के आरोह को देखने से यह पता लगा सकते हैं कि धैवत का प्रयोग सीधा न होकर वक्र होता है। इस दृष्टि से आरोह की जाति में धैवत को नहीं माना जाना चाहिए। दूसरी ओर अगर हम आरोह में धैवत को नहीं मानते हैं तो केवल चार ही स्वर बचते हैं। नियमानुसार राग के आरोह या अवरोह में कम से कम 5 स्वर अवश्य

होने चाहिए। इसलिए आरोह में धैवत को पांच की संख्या पूरी करने के लिए किया गया है। अवरोह में गन्धार से सा तक आने में मींड का प्रयोग किया जाता है और रिषभ को अल्प रखा जाता है। इसका वादी स्वर गन्धार तथा सम्वादी निषाद है। यह उत्तरांग प्रधान राग है। अतः इसका चलन सप्तक के उत्तर अंग तथा तार सप्तक में अधिक होता है। प से गंधार को आते समय सर्वप्रथम रे का कण लेते है। जैसे – ग प रेग रेसा ग सा इस राग का गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसके समीप का राग बिहाग है, किन्तु बिहाग में मध्यम स्पष्ट होने के कारण दोनों राग एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

आरोह	–	सा ग प नि ध सां
अवरोह	–	सां नि प, नि ध सां, नि प ग प ग सा
पकड़	–	सां नि प, नि ध सां, नि प, ग प ग सा

<u>स्वर विस्तार</u> :–

1. सा ग सा, (सा) ऩि प़ ऩि सा, प ग प ग सा।
2. ग ग–प, नि – – प ग प, नि ध सां (सां) नि प, ग प ग ऽऽ प ग सा,
3. प प सां – – सां रें सां, सा गं सां गं पं गं सां (सां) नि – – प, नि ध (सां) नि – – प ग प ग सा

<u>1.11.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–</u>

1. ग प रेग सा।
2. ग प नि ध (सां) नि – प।
3. प ग – – प ग सा।

<u>1.11.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–</u>

1. प़ ऩि सा ग सा ग प।
2. नि ध सां नि – – प।
3. ग प नि, नि प।
4. सां नि – प ग प नि सां नि।

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. मियां मल्हार की जाति............................ है।
2. मालकौंस राग का गायन समय .... है।
3. मुल्तानी राग .... थाट से उत्पन्न है।
4. तोड़ी का वादी स्वर ....तथा संवादी स्वर .... है।
5. दरबारी राग .... थाट से उत्पन्न माना गया है।
6. बसन्त राग .... जाति का राग है।
7. राग परज का वादी स्वर .... तथा संवादी स्वर .... है।
8. राग शंकरा का गायन समय रात्रि का .... प्रहर है।

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. मुल्तानी राग का पूर्ण परिचय दीजिए।
2. राग मियाँ मल्हार का पूर्ण परिचय दीजिए।
3. स्वरवाद्य में तन्त्रकारी शैली के विषय में समझाइए।

1.12 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के विषय में जान चुके होंगे। आप पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके हैं। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वर, राग का वादी, सम्वादी, राग के पकड़ स्वर एवं राग के मुख्य स्वर समुदाय जिनके द्वारा राग को एक दूसरे से अलग करके पहचाना जा सकता है इन सबका ज्ञान भी आप प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में आपने अंगों के आधार पर तथा राग के चलन के आधार पर समान प्रकार के रागों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया, जिससे आप एक राग से दूसरे राग को पृथक कर उसके सैद्धान्तिक स्वरूप को भी समझ चुके होंगे और इसके साथ रागों को क्रियात्मक रूप में सफलता पूर्वक प्रस्तुत कर सकेंगे। स्वर समूहों द्वारा राग पहचानना का अध्ययन भी आपने इस इकाई में किया है जिससे आप स्वर समूह को पढ़कर तथा सुनकर रागों को पहचान सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाठ्यक्रम के रागों को पूर्ण रूप से समझ सकेंगे एवं उसके सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक पक्ष को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर सकने में सक्षम होंगे।

1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. सम्पूर्ण–षाड़व
2. रात्रि का दूसरा प्रहर
3. तोड़ी थाट
4. वादी स्वर ध तथा संवादी स्वर ग
5. आसावरी थाट
6. औड़व–सम्पूर्ण
7. वादी स्वर सा तथा संवादी स्वर प
8. रात्रि का दूसरा प्रहर

1.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1–6, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. बसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. झा, पं0 रामाश्रय 'रामरँग', अभिनव गीतांजली।
4. श्रीवास्तव, सतीश चन्द्र, सितार वादन भाग–1।
5. भटनागर, रजनी, सितार वादन की शैलियां, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
6. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्र, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धपि एवं भारतीय संगीत।

1.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं चार रागों का पूर्ण परिचय प्रस्तुत कीजिए।
2. स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के विषय में लिखिए।

इकाई 2 – संगीतज्ञों(उ0 विलायत खाँ, उ0 इलियास खाँ, पं0 हरिप्रसाद चौरसिया, शरन रानी व उ0 अमजद अली खाँ) का जीवन परिचय।

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संगीतज्ञों का जीवन परिचय
  2.3.1 उ0 विलायत खाँ
  2.3.2 उ0 इलियास खाँ
  2.3.3 पं0 हरिप्रसाद चौरसिया
  2.3.4 शरन रानी
  2.3.5 उ0 अमजद अली खाँ
2.4 सारांश
2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप पाठ्यक्रम के रागों से परिचित हो चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में आपको उ0 विलायत खाँ, उ0 इलियास खाँ, पं0 हरिप्रसाद चौरसिया, शरन रानी व उ0 अमजद अली खाँ जी का जीवन परिचय तथा सांगीतिक योगदान के बारे में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इन प्रतिष्ठित संगीतज्ञों के व्यक्तित्व तथा संगीत के प्रचार–प्रसार में इनके योगदान के बारे में जान सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि :–

- उक्त संगीतज्ञों ने किन–किन गुरूजनों से शिक्षा ग्रहण की।
- इन संगीतज्ञों ने किन घरानों का प्रतिनिधित्व किया।
- इन संगीतज्ञों को कौन–कौन से सम्मान व पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।
- इन संगीतज्ञों ने किन–किन संगीत संस्थानों/संगीत विद्यालयों की स्थापना की।
- इन्होंने कौन सी नई रचना, ग्रन्थ इत्यादि लिखा है।

2.3 जीवन परिचय

प्रस्तुत इकाई में आप उ0 विलायत खाँ, उ0 इलियास खाँ, पं0 हरिप्रसाद चौरसिया, शरन रानी व उ0 अमजद अली खाँ जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के बारे में विस्तार से जानेंगे।

2.3.1 उ0 विलायत खाँ :–

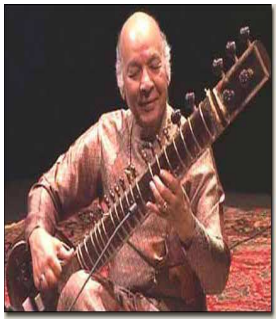

जन्म – सुप्रसिद्ध सितार वादक विलायत खाँ का जन्म पूर्वी बंगाल के गौरीपुर स्टेट में 28 अगस्त सन् 1928 को हुआ।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – इनके पिता का नाम उ0 इनायत खाँ था, जो अपने युग के सुप्रसिद्ध सितार वादक थे। आपके पितामह उ0 इमदाद खाँ सितार और सुरबहार वादन के प्रथम आचार्य थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आपके पिता उ0 इनायत खाँ से शुरू हुई। आप इमदादखानी घराना से ताल्लुक रखते हैं। 11 साल की उम्र में ही पिता का साया सर से उठ जाने के बाद आपने दिल्ली आकर आपने अपने नाना बंदे हुसेन खाँ से गायन तथा सुरबहार की शिक्षा ली। आपने बाद में अपने चाचा वहीद खाँ से भी शिक्षा ग्रहण की। आपने उ0 फैयाज़ खाँ से ख्याल गायन की शिक्षा ग्रहण की। आप पर उ0 अल्लादिया खाँ, उ0 मुश्ताक हुसैन खाँ तथा उ0 अमीर खाँ जैसे दिग्गजों की गायकी का भी बहुत प्रभाव दिखता है। इस तरह आपने सितार वादक के साथ–साथ गायकी में भी महारत प्राप्त की जो उनके वादन में स्पष्ट दिखाई देती है।

सन् 1944 में बम्बई के एक संगीत सम्मेलन में विलायत खाँ ने ऐसा सितार–वादन किया कि पूरे देश में आप प्रसिद्ध हो गए। इसके बाद आपको कई संगीत सम्मेलनों में सितार वादन के लिए आमंत्रित किया गया और आप श्रोताओं के प्रिय सितार वादकों में से एक बन गए। आपने विश्व के कई देशों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किए तथा भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रचार–प्रसार भी किया। आपके सितार वादन के कई रिकार्ड उपलब्ध हैं। आपके द्वारा कई हिन्दी फिल्मों जैसे 'क्षुधित पाषाण', 'गुरू' आदि में संगीत भी दिया गया।

आपने कुछ रागों का निर्माण भी किया जैसे–इनायतखानी कानडा, सांझ सरावली, कलावन्ती, मांड भैरव।

विशेषताएं – उ0 विलायत खाँ का सितार वादन प्रमुखतः गायकी के ख्याल अंग से अधिक प्रभावित है। आप अपने वादन में आलाप, जोड़ और गत वादन मुख्यतः गायकी अंग से बजाया करते थे जो आपके वादन में चार चाँद लगा देता। एक ही पर्दे पर कई स्वरों की मींड खींच कर रस निष्पादन करना आपकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है, जिससे श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते। आपका गतकारी से पूर्व जोड–आलाप बहुत प्रभावशाली होता था। इसके पश्चात जब आप ख्याल अंग की बंदिश का वादन करते तो लोग कहते थे कि आपका सितार बजता नहीं बल्कि गाता है। आपके द्वारा बजाई जाने वाली गतें विचित्र एवं श्रवणीय होती थी। आपका आलाप, जोड, मींड़, कृंतन व गमक का काम गजब का था। तानों में सरल तान, कूट तान व फिरत तान का बखूबी प्रयोग सुनने को मिलता है। आपके वादन की अन्य विशेषताओं में माधुर्य, सुरीलापन व चैनदारी प्रमुख है।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको 1964 में पद्मश्री तथा 1968 में पद्म भूषण प्रदान किया गया किन्तु आपने इन्हें लेने से इन्कार कर दिया। 2000 में आपको पद्म विभूषण मिला और आपने इसे भी लेने से मना कर दिया। आपने संगीत नाट्क अकादमी आवार्ड भी ठुकरा दिया। आपने जो सम्मान स्वीकार किए उनमें से एक था आर्टिस्ट एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा दिया गया 'भारत सितार सम्राट' तथा दूसरा था 'आफताब–ए–सितार' जो राष्ट्रपति फकरूद्दीन अली अहमद ने प्रदान किया था।

शिष्य परम्परा – आपके अनेक शिष्य हैं जिनमें प्रमुख हैं–उस्ताद इमरत हुसैन खाँ(भाई), उस्ताद शुजात हुसैन खाँ(पुत्र), उस्ताद हिदायत खाँ(पुत्र), अरविंद पारीख, कल्याणी रॉय, काशीनाथ मुखर्जी, बेंजामिन गोम्स, श्रीमती बिन्दू झवेरी, कैलाश सूद, हरविन्दर शर्मा, विरेन्द्र कुमार, पं0 गिरिराज आदि।

मृत्यु – उ0 विलायत खां का देहान्त 13 मार्च 2004 को हुआ।

2.3.2 उ0 इलियास खां :–

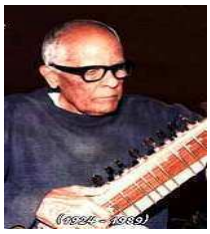

जन्म – उस्ताद इलियास हुसैन खाँ साहब का जन्म सन् 1924 को लखनऊ के एक संगीत परिवार में हुआ।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – आपके पिता का नाम उस्ताद इस्माइल खाँ है। आपने यूसुफ अली खाँ, उस्ताद सखावत हुसैन खाँ तथा उस्ताद अब्दुलगनी खाँ(सितार) से शिक्षा प्राप्त की। आप उस्ताद इनायत खां के सितार से काफी प्रभावित थे। आपने कई जगह अपना सितार वादन प्रस्तुत किया।

विशेषताएं – आप सेनिया घराने से ताल्लुक रखते थे। आपने सेनिया घराने की बंदिशों को साधा था। आपने सेनिया घराना, इसकी बंदिशों तथा इसकी वादन शैली को अपने स्तर से प्रचारित व प्रसारित भी किया। आपके वादन में ध्रुपद अंग की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। इसके साथ–साथ आपकी वादन शैली में बीन, रबाब व सुरसिंगार वाद्यों की शैली भी साफ दिखती है। एक समय जब उस्ताद विलायत खाँ व पं0 रविशंकर अपनी एक व्यक्तिगत शैली बनाने के लिए प्रयोग कर रहे थे तब तक उस्ताद इलियास खां अपनी शैली बना चुके थे। आपकी तानें द्रुत गति की होती थी। आप लगातार राग के स्वरों को छेडते रहते थे ताकि राग का स्वरूप हमेशा सामने दिखता रहे। मधुरता बनाए रखते हुए आपने सितार को गति प्रदान करने में भी योगदान दिया।

मृत्यु – उस्ताद साहब 2 मार्च सन् 1989 को सदा के लिए ब्रह्म निद्रा में लीन हो गए।

2.3.3 पं0 हरिप्रसाद चौरसिया :–

जन्म – पं0 हरि प्रसाद चौरसिया का जन्म 1 जुलाई सन् 1939 को हुआ।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – आपने सर्वप्रथम मास्टर राजाराम से शिक्षा लेना शुरू किया जो एक साधारण बांसुरी वादक थे। बाद में आपने भोलानाथ जी से बांसुरी वादन की शिक्षा प्राप्त। भोलानाथ जी उस समय आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र पर नियुक्त थे। यह प्रक्रिया चार–पांच वर्षों तक चली। बाद में अन्नपूर्णा देवी के द्वारा भी आपने संगीत की बारीकियों को सीखा। लेकिन अन्नपूर्णा देवी ने यह कहा था कि वे तब सीखाएंगी जब वह दाएं हाथ की जगह बाएं हाथ से बांसुरी बजाएंगे।

आपने सन् 1955 से आकाशवाणी से कार्यक्रम देने शुरू कर दिए थे। उसी समय आकाशवाणी के कटक केन्द्र में बांसुरी कलाकार के रूप में आपने कार्य करना शुरू कर दिया। आपने कठिन साधना व परिश्रम के बल पर संगीत की साधना शुरू की और इसी के चलते आप प्रसिद्ध होने लगे। कुछ समय पश्चात आप स्थानान्तरण के चलते कटक केन्द्र से मुम्बई आ गए। मुम्बई में आप शास्त्रीय संगीत जगत में पं हरि प्रसाद चौरसिया के नाम से प्रसिद्ध हुए। जब आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के बांसुरी वादन में एक कलाकार के रूप में स्थापित हो गए तब आपने 1964 में आकाशवाणी का पद त्याग दिया। आपने कुछ फिल्मों जैसे–चांदनी, डर, लम्हें, सिलसिला, फासले, विजय, साहिबान में संतूर वादक पं0 शिव कुमार शर्मा के साथ मिलकर ''शिव–हरि'' के नाम से संगीत भी दिया।

विशेषताएं – आपने बांसुरी वाद्य को एकल वादन के क्षेत्र में प्रसिद्धी दिलाई। आपके अथक प्रयास से भारतीय शास्त्रीय संगीत में बांसुरी को एक उचित स्थान मिल पाया। आप गायकी अंग से बांसुरी वादन करते हैं। द्रुत गति में तंत्रकारी अंग भी आप बहुत खूबसूरती से पेश करते हैं। आपके प्रयासों से बांसुरी अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर अपनी जगह बनाने में सफल हो पाई।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको अनेक पुरस्कार से नवाजा गया जिनकी सूची निम्न है :–

1. 1984 में संगीत नाट्क अकादमी अवार्ड।
2. 1992 में कोणार्क सम्मान।
3. 1992 में पद्म भूषण।
4. 1994 में यश भारती सम्मान।
5. 2000 में पद्म विभूषण।

6. 2000 में हाफिज अली खां अवार्ड।
7. 2000 में दीनानाथ मंगेशकर अवार्ड।
8. 2008 में नार्थ उडीसा यूनिवर्सिटि से डाक्टरेट की उपाधि।
9. 2011 में उत्कल यूनिवर्सिटि से डाक्टरेट की उपाधि।

शिष्य परम्परा – आप अपने सभी शिष्यों को खुले दिल से संगीत की शिक्षा प्रदान करते हैं जिससे भारतीय शास्त्रीय संगीत की नई पौंध तैयार हो सके।

2.3.4 शरन रानी :–

जन्म – आपका जन्म 9 अप्रैल 1929 को दिल्ली में हुआ।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – आपके परिवार में संगीत का माहौल नहीं था। आपने परिवार के दबाव खिलाफ सर्वप्रथम अच्छन महाराज से कथक तथा गुरू नभा कुमार सिन्हा जी से मणिपुरी नृत्य सीखा। 8 वर्ष की उम्र से आप सरोद के प्रति आकर्षित हुए। आपके माता–पिता का देहावसान आपकी कम उम्र में ही हो गया। उस समय घराना पद्धति में पुरूषों का वर्चस्व कायम था। इन विषम परिस्थितियों के बावजूद आपके अथक प्रयास से, भारतीय वाद्य संगीत में महिलाओं के लिए अवसर खुल गए। आपने सरोद की शिक्षा बाबा गुरू उस्ताद अल्लाउद्दीन खां साहब से तथा उनके बेटे उस्ताद अली अकबर खां से प्राप्त की। आपने अपना घर छोड दिया तथा मैहर में रहकर ही बाबा गुरू उस्ताद अल्लाउद्दीन खां साहब से शिक्षा प्राप्त की। आपने सन् 1953 में दिल्ली विश्वविद्यालय से एम0ए0 की परीक्षा पास की।

आप कम उम्र से ही संगीत कार्यकम्रों में शिरकत करने लगी थी। आपने देश विदेश में अपने सरोद वादन से भारतीय शास्त्रीय संगीत की सेवा की तथा उन लोगों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बनी जो संगीत परिवारों से नहीं आते हैं। आपने उस्ताद अली अकबर खां, पं0 रविशंकर आदि महान संगीतकारों के जैसे विदेशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

विशेषताएं – आप एक प्रतिभावान शिष्या थी। आपने मां सरस्वती की सच्चे दिल से साधना की जिसका परिणाम उनके सरोद वादन में देखने को मिलता है। आप एक कुशल संगीतकार थी तथा आपने कई रागों व बंदिशों का निर्माण किया। आप एकमात्र ऐसी वादिका थी जिन्होंने सरोद के साथ पखावज व तबले की संगत परम्परा को जीवित रखा।

आपके निरन्तर शोध के कारण सरोद पर एक पुस्तक 'द डिवाईन सरोद' बनी। आपने संगीत विषय पर कई लेख भी लिखे जो विदेशी भाषाओं में भी अनुवादित हुए।

पुरस्कार एवं सम्मान – आपको उस समय के राष्ट्रपति डा0 राधाकृष्नन के द्वारा गोल्ड मेडल प्रदान किया गया। सात दशकों से भी अधिक समय तक संगीत में सक्रिय रहने के कारण आपको 'सरोद रानी' नाम दिया गया। 1950 के बाद आपने एशिया तथा अन्य महाद्वीपों में भारतीय शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिस कारण उस समय के प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने आपको 'कल्चरल एम्बेसडर ऑफ इंडिया' से संबोधित किया। भारतीय शास्त्रीय संगीत की आप पहली महिला हैं जिन्हें सन् 1968 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया। सन् 1974 में आपको साहित्य कला परिषद पुरस्कार(दिल्ली राज्य), सन् 1986 में संगीत नाटक अकादमी अवार्ड, सन् 2000 में आपको पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। सन् 2004 में आपको बिसम्मिल्लाह खाँ, पं0 रविशंकर, एम0एस0 सुब्बालक्ष्मी के साथ 'राष्ट्रीय कलाकार' का खिताब मिला।

शिष्य परम्परा – आपने गुरू–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत कई शिष्यों को मुक्त हस्त से संगीत की शिक्षा प्रदान की। उसमें कई विदेशी शिष्य भी शामिल थे। युवाओं में भारतीय शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए आपने विशेष निशुल्क कार्यशालाओं का आयोजन भी किया।

मृत्यु – 8 अप्रैल 2008 को आपका देहावसान हो गया।

2.3.5 उ0 अमजद अली खाँ :–

जन्म – उस्ताद अमजद अली खाँ का जन्म मध्य प्रदेश के ग्वालियर शहर में 9 अक्टूबर 1945 को एक संगीत परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम उस्ताद हाफिज अली खाँ था।

संगीत शिक्षा एवं कार्यक्रम – उस्ताद अमजद अली खाँ ने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की। उस्ताद अमजद अली खाँ ने सरोद वादन की पारम्परिक शैली को आगे बढाया और ख्याल गायन की शैली को भी अपनाया तथा साथ ही इस गायन पद्धति को एक नई दिशा प्रदान की।

लोक वाद्य रबाब में संशोधन करके ही सरोद बनाया गया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि लोक वाद्य रबाब का संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप ही सरोद है। मध्यकालीन ईरान में रबाब एक बहुत प्रसिद्ध वाद्य था। मध्यकालीन ईरान से अफगानिस्तान होता हुआ यह भारत आया। भारत में भी इस वाद्य को संगीत जगत ने अपनाया। मुगलकालीन समय में इस वाद्य के चित्रों का अनेक जगह पर अंकन मिलता है। प्राचीन साहित्यिक सन्दर्भों और ग्रन्थों से पता चलता है कि आंबेर के महलों में रबाब बजाया जाता था। कहा जाता है कि उस्ताद अमजद अली खाँ के पूर्वजों ने इस प्राचीन वाद्य रबाब को संशोधित एवं परिवर्तित करके भारतीय संगीत जगत में पहचान दिलाई। वर्तमान समय में सरोद का स्वरूप सेनिया घराने के स्व0 उस्ताद गुलाम बंदगी खाँ बंगश की देन है। यह अमजद खां के प्रपितामह थे। सरोद वादन में कई नई चीजें जुड़ती रही और यह वाद्य विकसित होता चला गया। इस वाद्य की वादन शैली पीढ़ी दर पीढ़ी पिता से पुत्र को विरासत में मिलती रही है। सुप्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद अमजद अली खां सेनिया बंगश घराने से ही ताल्लुक रखते हैं। सेनिया घराना को ग्वालियर घराने के नाम से भी जानते हैं।

उस्ताद अमजद अली खां के प्रमुख कार्यक्रम एवं गतिविधियां निम्न प्रकार से हैं :–

1. 1982 में हांगकांग संगीत समारोह में चीनी संगीतज्ञों के साथ कार्यक्रम।
2. 1986 में ''एकता से शान्ति' संयुक्त राष्ट्र बालकोष की 40 वीं वर्षगांठ पर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया।
3. 1988 में सरोद समारोह का आयोजन, जिसमें देश के चालीस से अधिक सरोद वादकों ने भाग लिया।
4. 1990 रवीन्द्र संगीत की अल्बम निकाली।
5. गणेश बैल, पूना में अपना संगीत दिया।
6. 1994 में वेलकम थियेटर ग्रुप की रामकथा में संगीत दिया।
7. 1995 में सरोद पर क्रिसमस गीत का कार्यक्रम जो अपने ढंग का प्रथम कार्यक्रम था। जिससे आपको ख्याति प्राप्त हुई।

उस्ताद अमजद अली खाँ कई समाजसेवी संस्थाओं से भी जुडे हैं जिनमें से ''दि इंडिया कैंसर सोसायटी, नेत्रहीन सहायता कोष व संयुक्त राष्ट्र बाल कोष आदि प्रमुख हैं। 1996 में खाँ साहब ने ग्वालियर के अपने पैतृक निवास स्थान को एक संग्रहालय में बदल दिया। इस संग्रहालय में आपने अपने पैतृक वाद्यों को एकत्र करके प्रदर्शित किया। साथ ही साथ आपने इसमें देश के अन्य जगहों के प्रसिद्ध संगीतकारों के वाद्यों को भी संग्रहीत व प्रदर्शित किया।

पुरस्कार एवं सम्मान –' उस्ताद अमजद अली खां ने विभिन्न देशों में सरोद वादन किया है और ख्याति प्राप्त की है। इन्हें अनेक सम्मान से भी नवाजा गया है जिनकी सूची निम्न है :–

1. 1960 में प्रयाग समिति द्वारा सरोद सम्राट से नवाजा गया।
2. 1970 में संयुक्त राष्ट्र शिक्षा एवं संस्कृति संगठन का सम्मान दिया गया।
3. 1975 में पद्मश्री की उपाधि।
4. 1991 में पद्म भूषण।
5. 1995 में यूनेस्को पेरिस का गांधी मैडल।
6. 1997 में यार्क विश्वविद्यालय, इग्लैण्ड द्वारा डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की गई।

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. उस्ताद विलायत खाँ ..... घराने से संम्बन्धित थे।
2. उस्ताद इलियास खाँ के सितार वादन में गायन के ..... अंग की झलक दिखती है।
3. पं0 हरि प्रसाद चौरसिया ने .....के साथ मिलकर ''शिव–हरि'' के नाम से संगीत दिया है।
4. शरन रानी पहली भारतीय महिला थी जिन्हें सन् ..... में पद्मश्री मिला।
5. उस्ताद अमजद अली खाँ के प्रपितामह का नाम ..... है।

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. उ0 अमजद अली खाँ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. पं0 हरिप्रसाद चौरसिया के सांगीतिक जीवन के विषय में लिखिए।

2.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने उ0 विलायत खाँ, उ0 इलियास खाँ, पं0 हरिप्रसाद चौरसिया, शरन रानी व उ0 अमजद अली खाँ जी के जीवन से जुड़े महत्वूपर्ण पहलुओं को जान चुके होंगे। इनके द्वारा सांगीतिक जगत को दिए गए योगदान के विषय में भी आपने जाना। आप जान चुके होंगे कि कितनी विपरीत परिस्थितियों में भी इन्होंने संगीत के क्षेत्र में नित्य परिश्रम के बल पर उपलब्धि हासिल की तथा संगीत की सेवा की।

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. इमदादखानी घराना
2. ध्रुपद अंग
3. पं0 शिव कुमार शर्मा
4. 1968
5. स्व0 उस्ताद गुलाम बंदगी खाँ बंगश

2.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, हरीश चन्द्र, हमारे प्रिय संगीतज्ञ।
2. जैन, डा0 वीणा, सेनिया घराना और सितार वादन शैली, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
3. वसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. साभार गूगल।

2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. संगीत मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, हमारे संगीत रत्न, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उ0 विलायत खाँ तथा शरन रानी का जीवन परिचय देते हुए उनके सांगीतिक योगदान के विषय में विस्तार से लिखिए।

इकाई 3 – संगीत संबंधी विषयों पर निबन्ध लेखन

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 निबन्ध की व्याख्या
3.4 निबन्ध के अवयव
3.4.1 भूमिका
3.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय की भूमिका
3.4.2 विषय वस्तु
3.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा
3.4.2.2 संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा
3.4.2.3 विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा
3.4.3 उपसंहार – संगीत शिक्षा विषय पर
3.5 सारांश
3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप पाठ्यक्रम के रागों से परिचित हो चुके हैं। आप संगीतज्ञों के जीवन तथा संगीत में उनके योगदान से भी परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में निबन्ध लेखन के विषय में आपको कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराया जाएगा। निबन्ध लिखते समय किन–किन बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है यह भी इस इकाई में वर्णित है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निबन्ध लेखन की विधि तथा निबन्ध लेखन के अवयवों से परिचित होंगे। आप किसी भी विषय पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- निबन्ध लेखन के अवयवों का सही प्रयोग कर सकेंगे।
- अपनी लेखन शैली का विकास कर सकेंगे।
- किसी भी विषय में आप व्यवस्थित रूप से निबन्ध प्रस्तुत कर सकेंगे।

3.3 निबन्ध की व्याख्या

निबन्ध के विषय में आपने पूर्व में काफी सुना है तथा प्राथमिक कक्षाओं से ही निबन्ध लेखन का अभ्यास कराया जाता है। प्रत्येक स्तर पर निबन्ध का स्तर भी पृथक होता है। निबन्ध किसी विषय विशेष की समग्र रूप में व्यवस्थित व्याख्या है। निबन्ध में विषय से सम्बन्धित समस्त पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किए जाते हैं। अतः निबन्ध में विषय की व्याख्या का स्वरूप व्यापक हो जाता है। विषय से सम्बन्धित पूर्व की उपलब्ध जानकारी को निबन्ध में समाहित कर उसका विश्लेषण किया जाता है और लेखक समालोचना के लिए भी स्वतंत्र रहता है। निबन्ध के माध्यम से लेखक व्याप्त भ्रान्तियों को भी दूर करने की चेष्टा करता है। इसी सन्दर्भ में निबन्ध और लेख के अन्तर को भी समझने की आवश्यकता है।

लेख प्रायः समस्या को लेकर आरम्भ किया जाता है एवं समस्या का निराकरण ही किसी लेख का मूल उद्देश्य रहता है। विद्यालय स्तर पर आपको दृश्यों का आंखों देखा वर्णन निबन्ध के रूप में लेखन का अभ्यास करवाया गया है। परन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर निबन्ध, विषय से ही सम्बन्धित रहता है और उस विषय के बारे में आपको समस्त जानकारी और यदि आवश्यक हो तो गुण–दोष के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। लेख सामान्य विषय पर वक्तव्य रूप में रहता है। निबन्ध लेखन अभ्यास से ही आप लेख लिखने एवं शोध पत्र लिखने में भी सक्षम होते हैं। अतः निबन्ध लेखन के अभ्यास से आपकी लेखन क्षमता बढ़ती है और आप अपने विचारों को कलम के माध्यम से प्रस्तुत करने की तकनीक भी विकसित कर पाते हैं। इस इकाई में स्नातकोत्तर स्तर के विषयों के निबन्ध की लेखन विधि पर चर्चा की जाएगी।

3.4 निबन्ध के अवयव

किसी भी विषय पर निबन्ध को प्रायः निम्न भागों में बांटकर विषय की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

1. भूमिका **2. विषयवस्तु** **3. उपसंहार**

3.4.1 भूमिका – इसके अन्तर्गत विषय के बारे में जानकारी देते हुए व्याख्या के अन्तर्गत आने वाले सन्दर्भों के बारे में बताते हैं। भूमिका के माध्यम से निबन्ध का स्वरूप पता चल जाता है। व्याख्या किन–किन बिन्दुओं पर केन्द्रित होनी है इसका संक्षिप्त परिचय भी भूमिका के माध्यम से दिया जाता है। भूमिका में विषय प्रवेश प्रस्तुत किया जाता है अर्थात विषय क्या है एवं विषय पर निबन्ध के माध्यम से हम विषय के सन्दर्भ में क्या–क्या चर्चा करेंगे।

उदाहरण के रूप में संगीत शिक्षा विषय के माध्यम से आपको निबन्ध की लेखन शैली से परिचित कराएंगे।

3.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय पर भूमिका – प्राचीन काल से ही संगीत का सन्दर्भ हमें सामवेद से प्राप्त होता है तथा वैदिक समय में ऋचाओं के गान की शिक्षा गुरूमुख से देने की परम्परा थी और इस परम्परा का निर्वाह काफी समय तक रहा। संगीत का वास्तविक स्वरूप क्रियात्मक है। अतः इसकी शिक्षा भी क्रियात्मक रूप में देने से ही संगीत का स्वरूप स्पष्ट हो पाता है। यद्यपि संगीत से सम्बन्धित अवयवों की व्याख्या समय–समय पर विभिन्न संगीत मनीषियों के द्वारा दी जाती रही है परन्तु संगीत को क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करने के लिए शिष्य को गुरूमुख से ही शिक्षा ग्रहण करना होती थी जिसके लिए गुरूकुल की व्यवस्था रहती थी। वर्तमान में संगीत शिक्षा का स्वरूप बदल चुका है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। संगीत को विषय के रूप में समझा जाने लगा है जिससे उसकी शिक्षा भी उसी के अनुरूप होने लगी है। जबकि संगीत को कला के रूप में ही समझने की आवश्यकता है। वर्तमान में संगीत हेतु शिक्षा के विभिन्न माध्यमों का अध्ययन कर उनके गुण दोष पर इस निबन्ध के माध्यम से विचार किया जाएगा।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध की भूमिका उदाहरण स्वरूप आपके लिए प्रस्तुत की गई है जिससे आप किसी भी विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका लिखने में सक्षम हो पाएंगे।

3.4.2 विषयवस्तु – भूमिका के पश्चात निबन्ध के विषय की विषय वस्तु प्रस्तुत की जाती है जिसमें विषय से सम्बन्धित सभी सन्दर्भों को प्रस्तुत किया जाता है। किसी विषय पर विषयवस्तु किस प्रकार लिखी जाती है इसका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत विषयवस्तु से जान सकेंगे।

संगीत शिक्षा विषय की विषयवस्तु – पहले संगीत की शिक्षा गुरूमुख से ही प्राप्त की जाती थी। परन्तु बाद में संगीत शिक्षा के नए स्वरूप भी स्थापित हुए। संगीत शिक्षा स्वरूप निम्न प्रकार हैः–

1. गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा।
2. संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा।
3. विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा।

3.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा – संगीत की शिक्षा शिष्य द्वारा गुरू के पास रहकर ही प्राप्त की जाती थी। इस शिक्षा पद्धति में शिष्य को अनुशासित होकर शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की लगन, धैर्य आदि को परखकर शिष्य को स्वीकार किया जाता था। गुरू द्वारा शिष्य को स्वीकार करने के पश्चात शिष्यत्व की औपचारिक घोषणा 'गंडा रस्म' अदायगी के साथ होती थी। इसमें गुरू और शिष्य एक दूसरे को 'धागा' बाँधकर प्रतिबद्धता का संकल्प लेते थे। इस प्रकार की शिक्षा में कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता था और न ही संगीत शिक्षा की समयावधि निश्चित होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की क्षमता के आधार पर ही शिक्षा दी जाती थी। एक ही गुरू के कई शिष्य होते थे। परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि सबको एक ही शिक्षा दी जाए। दी हुई संगीत शिक्षा का अभ्यास भी गुरू के निर्देशन में ही होता था। संगीत शिक्षा के अतिरिक्त संगीत सुनने का मार्ग निर्देशन का उद्देश्य यह था कि शिष्य अपना विवेक एवं धैर्य न खो बैठे। इस प्रकार की शिक्षा में धैर्य का बहुत महत्व था और लगन से गुरू द्वारा दिए गए अभ्यास के नियमों से कठिन अभ्यास करने की आवश्यकता होती थी। गुरू जब तक शिष्य को कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अनुकूल नहीं समझता था तब तक शिष्यों को कार्यक्रम प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होती थी। बल्कि शिष्य को कार्यक्रम के योग्य समझने के पश्चात शिष्य को संगीतकारों के मध्य प्रस्तुत किया जाता था जिससे वह सभी संगीतज्ञों का आशीर्वाद प्राप्त करें। इस प्रकार की संगीत शिक्षा में शिष्य, गुरू के सानिध्य में संगीत के गूढ़ रहस्यों को जानता था। संगीत में घराने स्थापित हुए एवं घरानों की शिक्षा इस संगीत शिक्षा पद्धति में ही सम्भव थी। शिष्य अपने गुरू के घराने से सम्बन्धित हो जाता था और उस घराने का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में अपना गौरव समझता था।

3.4.2.2 संगीत संस्थानों द्वारा संगीत शिक्षा – आधुनिक समय में संगीत संस्थानों का महत्व बढ़ गया है। पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे एवं विष्णुदिग्बर पलुस्कर ने संगीत शिक्षा का प्रचार इस प्रकार किया जिससे संगीत क्रियात्मक रूप में विकसित होने लगा। गुरूमुख शिक्षा पद्धति में बहुत कम लोग ही शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। अतः दो संगीत मनीषियों ने संगीत के अधिक प्रचार एवं प्रसार हेतु संगीत संस्थानों की कल्पना कर पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा लखनऊ में 'मैरिस कालेज आफ म्यूजिक' एवं विष्णुदिगम्बर पलुस्कर द्वारा पूना में 'गन्धर्व मंडल' की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत देश के कई शहरों में 'गन्धर्व संगीत महाविद्यालय' के नाम से संगीत शिक्षण संस्थान खोले गए। यह संगीत शिक्षण की औपचारिक व्यवस्था का आरम्भ था। इन संस्थानों में प्रत्येक वर्ष के लिए पाठ्यक्रम निश्चित किए गए तथा वर्ष के अन्त में परीक्षा की भी व्यवस्था की गई। इन संस्थानों में संगीत के गुणीजन, गुरू अथवा उस्तादों को संगीत शिक्षा हेतु आमंत्रित किया गया और इनके लिए किसी प्रकार के औपचारिक प्रमाण–पत्रों की बाध्यता नहीं रखी गई ।

संगीत के विद्यार्थियों को परीक्षा में सफल होने पर औपचारिक प्रमाण–पत्र देने की व्यवस्था भी की गई। संगीत की हर विधा और हर अंग के लिए विशेषज्ञ रखे गए। प्रतिदिन संगीत शिक्षा का समय भी निर्धारित किया गया तथा अन्य संस्थानों की भाँति इन संस्थानों में भी उत्सव एवं त्यौहारों पर अवकाश का प्राविधान था। जबकि गुरूमुख शिक्षा पद्धति में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं रहती थी और शिष्य को गुरू के पास रहकर ही सीखना होता था और गुरू द्वारा शिष्य को किसी समय भी शिक्षा के लिए बुला लिया जाता था जिसमें शिष्य को उपस्थित होना आवश्यक होता था। संगीत संस्थानों की शिक्षा में शिष्य गुरू के सानिध्य में निश्चित समय के लिए ही रहता है और प्राप्त की गई शिक्षा का अभ्यास स्वयं घर पर ही करता है। संगीत संस्थानों की शिक्षा पद्धति में गुरू का शिष्य के ऊपर नियंत्रण गुरूमुखी शिक्षा पद्धति की अपेक्षा कम रह पाता है। प्रारम्भ में इन संस्थानों में संगीत की शिक्षा हेतु पाँच से छः वर्षों का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। संस्थानों में पाँच, छः वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी यह माना गया कि इसके पश्चात भी शिष्य को गुरू के सानिध्य की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इन दो संस्थानों की स्थापना के पश्चात प्रयाग(इलाहाबाद) में 'प्रयाग संगीत समिति' एवं पंजाब के चंडीगढ़ क्षेत्र में प्राचीन कला संगीत संस्थान की स्थापना हुई। इन सभी संस्थानों ने देश के भिन्न–भिन्न शहरों में अपने केन्द्र स्थापित किए। यद्यपि इन केन्द्रों पर शिक्षा का प्रचार हुआ एवं विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र मिलने लगे।

गुरूमुखी शिक्षा में गुरू एवं शिष्य दोनों का ही लक्ष्य कलाकार बनना तथा बनाना होता था जिसके लिए शिष्य द्वारा अनुशासित अभ्यास किया जाता था और संगीत ही एकमात्र लक्ष्य रहता था। संगीत संस्थानो में ऐसे भी विद्यार्थी शिक्षा लेते थे जिनका लक्ष्य केवल संगीत ही नहीं होता था बल्कि संगीत की शिक्षा शौकिया रूप में लेते थे। अतः संगीत संस्थानों में संगीत के विद्यार्थियों को समूह में एकरूपता नहीं रहती थी। गुरू द्वारा भी एक ही कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को लगभग एक जैसी ही शिक्षा दी जाती थी जो कि संस्थानों के शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता एवं सीमा भी थी। अतः संगीत संस्थानों से शिष्य उस प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते थे जिस प्रकार की शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में प्राप्त होती थी। संगीत संस्थानों का उद्देश्य संगीत शिक्षा के माध्यम से संगीत का प्रचार एवं प्रसार था और यह सामान्य रूप से संस्थानों के उदेद्श्य के बारे में कहा जाता था कि संस्थान तानसेन नहीं तो कानसेन तो बना ही देते हैं। अर्थात संगीत कलाकार न भी बन पाएं तो एक संगीत का अच्छा श्रोता तो बन ही जाता है। इन संगीत संस्थानों ने विभिन्न शहरों में अपने परीक्षा केन्द्र खोले जहाँ पर संगीत शिक्षा देने का भी प्रावधान किया गया तथा विद्यार्थी इन केन्द्रों से संगीत सीखकर प्रमाण–पत्र प्राप्त करने लगे। इन प्रमाण–पत्रों को सरकार के शिक्षा निदेशालय द्वारा मान्यता प्रदान की गई।

विद्यालयों में बिना इन संस्थानों के प्रमाण–पत्र के नियुक्तियाँ नहीं होती हैं। विद्यालय स्तर पर शिक्षक के लिए अन्य विषयों में बी. एड. अनिवार्य अर्हता है परन्तु संगीत विषय में शिक्षक होने के लिए बी.एड. के स्थान पर 'संगीत विशारद' एवं 'संगीत प्रभाकर' होना आवश्यक है जो कि इन संस्थानों द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र है। इस व्यवस्था से इन केन्द्रों पर संगीत के प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ गई। इन संगीत संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात कलाकार बनने के इच्छुक विद्यार्थियों को गुरू शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही शिक्षा लेना अनिवार्य रहता है इन संस्थानों द्वारा सामान्य संगीत के जिज्ञासु एवं विद्यार्थियों ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.4.2.3 विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय अन्य विषयों की भाँति संगीत विषय पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय का पाठ्यक्रम तैयार कर समय–सारिणी में वादन (पीरियड) शिक्षण के लिए निश्चित किया गया। इनमें शिक्षण पाठ्यक्रम के अनुसार ही दिया जाता है और अध्यापक द्वारा सब विद्यार्थियों को समान रूप से ही अध्यापन कराया जाता है। स्नातक स्तर तक एक वादन प्रायः 45 मिनट का होता है जो कि संगीत की व्यवहारिकता के अनुकूल नहीं है क्योंकि 45 मिनट के अन्दर ही वाद्यों को स्वर में करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः देखा जा रहा है कि

विश्वविद्यालय स्तर पर भी संगीत की मूल आवश्यकता वाद्यों को स्वर में करना विद्यार्थी पूर्ण से नहीं सीख पाते हैं। स्नातक स्तर तक विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को संगीत विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करना होता है। अतः विद्यार्थी संगीत के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं हो पाता है। संगीत की आवश्यकता होती है, जिसमें अधिक से अधिक समय देने से ही संगीत कला को समझा जा सकता है।

विद्यालय, विश्वविद्यालय में संगीत विषय प्रारम्भ होने से संगीतज्ञों को व्यवसाय तो प्राप्त हुआ परन्तु इससे संगीत शिक्षा की गुणात्मकता पर प्रभाव पड़ा। यद्यपि विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत के विद्वान भी नियुक्त हुए परन्तु इन संस्थानों की व्यवस्था में उतने समय के लिए संगीत शिक्षक भी सीमा में बँध गए। संगीत संस्थानों में गुरू परम्परा पद्धति में शिष्य पूर्ण रूप से संगीत के वातावरण में रहता था और संगीत संस्थानों में भी जितने समय के लिए वह संस्थान में है उतने समय तक वह संगीत के वातावरण में रहता था। परन्तु विद्यालय और विश्वविद्यालय में विद्यार्थी केवल संगीत के वादन (पीरियड) में ही संगीत के वातावरण से जुड़ा रहता है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों से उपाधि सामान्य रूप में मिलती है जिसमें संगीत एक विषय के रूप में रहता है जबकि संगीत संस्थानों में मिलने वाली उपाधि एवं प्रमाण पत्र केवल संगीत का ही मिलता है और गुरू–शिष्य परम्परा में तो कोई औपचारिक प्रमाण–पत्र नहीं होता है। इसमें शिष्य स्वयं अपनी शिक्षा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय शिक्षा, स्नातकोत्तर उपाधि के लिए दी जाने लगी है, जिसमें केवल संगीत विषय का ही अध्ययन विद्यार्थी को करना होता है।

विश्वविद्यालय स्तर पर केवल स्नातकोत्तर कक्षाओं में ही विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है जो मात्र दो वर्ष के पाठ्यक्रम में निबद्ध होता है। संगीत की शिक्षा गुणात्मकता के साथ स्नातकोत्तर स्तर पर ही हो पाती है जिसका स्वरूप संगीत संस्थानों की शिक्षा जैसा रहता है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में विद्यार्थियों को संगीत के अध्ययन और अभ्यास का समय प्राप्त होता है। विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातक की कक्षाओं में संगीत विषय का विद्यार्थी सीमित समय जो कि उसके लिए समय सारिणी में निश्चित किया गया उसमें ही संगीत शिक्षक के सम्पर्क में रहता है। इसी उपलब्ध समय में शिक्षक का उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करने का भी होता है। अतः गुरू शिष्य परम्परा पद्धति एवं संगीत संस्थान द्वारा शिक्षा पद्धति की तुलना में विश्वविद्यालय द्वारा दी जाने वाली संगीत शिक्षा की गुणवत्ता में कमी रहती है। स्नातकोत्तर में भी यही स्थिति रहती है परन्तु इसमें विद्यार्थी तथा शिक्षक के पास संगीत विषय के लिए अधिक समय रहता है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थी विश्वविद्यालय शिक्षा के अतिरिक्त संगीत संस्थानों एवं गुरू की सहायता भी प्राप्त करते हैं। संगीत में शिक्षक बनने हेतु विश्वविद्यालय प्रमाण–पत्र की आवश्यकता होती है अतः विद्यार्थी संगीत हेतु विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है। केवल विश्वविद्यालय की संगीत शिक्षा से विद्यार्थी का कलाकार बनना कठिन है और न ही विश्वविद्यालय का यह उद्देश्य ही है। विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को संगीत पढ़ाने का उद्देश्य है कि विषय से सम्बन्धित आयामों से विद्यार्थी को परिचित कराया जा सके जिससे वह भविष्य के लिए अपने विकल्प चुन सके।

विश्वविद्यालय की उपाधि प्रमाण–पत्र का महत्व संगीत की शिक्षक अर्हता के रूप में ही है। व्यवसायिक कलाकार बनने में इसका कोई महत्व नहीं है। विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं व्यवहारिक नहीं हैं जिससे इनमें सदैव योग्य संगीत शिक्षक नियुक्त नहीं हो पाते हैं। संगीत विषय मुख्य रूप से क्रियात्मक विषय है परन्तु नैट की परीक्षा जो कि विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षक के लिए पास करना अनिवार्य अर्हता है। परन्तु इस परीक्षा में संगीत विषय हेतु विद्यार्थी के क्रियात्मक ज्ञान को नहीं परखा जाता है जबकि संगीत विषय के शिक्षक के लिए क्रियात्मक ज्ञान होना आवश्यक है।

अभी तक आपने संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका एवं विषय वस्तु का अध्ययन किया जो कि निबन्ध लेखन के लिए उदाहरण स्वरूप आपको बताया गया। किसी विषय के निबन्ध पर उपसंहार लिखने के विषय में संगीत शिक्षा विषय निबन्ध पर नीचे लिखे गए उपसंहार से समझेंगे।

3.4.3 उपसंहार संगीत शिक्षा विषय पर – संगीत शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा, संगीत संस्थानो के माध्यम से विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में एक विषय के रूप में दी जाती है। गुरू शिष्य परम्परा में गुरू और शिष्य के मध्य अटूट सम्बन्ध बन जाता है और शिष्य गुरू के सानिध्य में रहकर संगीत के गूढ़ रहस्यों को सीखता है। इसमें गुरू एवं शिष्य दोनों का उद्देश्य कलाकार बनाना तथा बनना होता है। संगीत संस्थानों में भी केवल संगीत शिक्षा दी जाती है जिसमें विद्यार्थी सीमित समय के लिए ही गुरू के सम्पर्क में रहता है और विश्वविद्यालय शिक्षा में स्नातक स्तर पर तो बहुत ही कम समय के लिए विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है। परन्तु संगीत शिक्षक बनने हेतु संस्थानों एवं विश्वविद्यालय में प्रमाण–पत्रों की आवश्यकता होती है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वह संस्थानों की शिक्षा अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में भी किसी गुरू से शिक्षा प्राप्त करे जिससे उसके पास संगीत शिक्षक का व्यवसाय अथवा व्यवसायिक कलाकार बनने का विकल्प रहेगा। उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष न निकाला जाए कि विश्वविद्यालय संगीत शिक्षा से ही अच्छा संगीत शिक्षा बन सकता है जबकि संगीत की सही शिक्षा प्राप्त ही अच्छा शिक्षक बनेगा। वर्तमान व्यवस्था में संगीत शिक्षक हेतु सभी माध्यमों का अपना महत्व है अतः विद्यार्थी को अपने निश्चित उद्देश्य के लिए इनका चयन करने की आवश्यकता है।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध के माध्यम से आपने निबन्ध लेखन के विषय में अध्ययन किया। कुछ अन्य संगीत सम्बन्धित विषयों की सूची दी जा रही है।

अभ्यास हेतु निबन्ध के विषय

1. फिल्मो में संगीत	**2. संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरणों का योगदान**
3. लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत	**4. भक्ति एवं संगीत**
5. संगीत एवं अध्यात्म	**6. संगीत एवं संचार माध्यम (रेडियो व टी0वी0)**
7. संगीत में अवनद्य वाद्यों की भूमिका	**8. संगीत गोष्ठी**

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि प्रत्येक विषय के निबन्ध का आरम्भ भूमिका से किया जाता है और निबन्ध का समापन उपसंहार से किया जाता है। उपरोक्त विषयों की विषयवस्तु नीचे दी जा रही है जिसके आधार पर आप इन विषयों पर निबन्ध लिख सकेंगे।

1. **फिल्मों में संगीत**
   - विषयवस्तु
   - फिल्म में संगीत का प्रयोग
   - पार्श्व गायन
   - फिल्म में वाद्यों का प्रयोग
   - गायन के साथ वाद्यों का प्रयोग
   - पार्श्व संगीत में वाद्यों का प्रयोग
   - फिल्मों में संगीत का स्थान एवं उपयोगिता

2. **संगीत में इलक्ट्रोनिक उपकरणों का योगदान**
   - विषयवस्तु
   - संगीत में प्रयोग होने वाले इलक्ट्रोनिक उपकरण

     (अ) – इलक्ट्रोनिक तानपुरा

     (ब) – इलक्ट्रोनिक तबला

     (स) – इलक्ट्रोनिक लहरा मशीन
   - संगीत के संरक्षण एवं शिक्षा में सहायक इलक्ट्रोनिक उपकरण

     1. ग्रामोफोन 2. टेपरिकार्डर

3. **लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत**
   - विषयवस्तु
   - लोक संगीत की पृष्ठभूमि
   - शास्त्रीय संगीत का परिचय
   - लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध

4. **भक्ति एवं संगीत**
   - विषयवस्तु
   - भक्ति की व्याख्या
   - विभिन्न धर्मों में भक्ति हेतु संगीत का प्रयोग
     1. हिन्दू 2. मुस्लिम 3. सिख 4. इसाई

5. **संगीत एवं आध्यात्म**
   - विषयवस्तु
   - संगीत की उत्पत्ति
   - वैदिक कालीन संगीत
   - आध्यात्म में संगीत का महत्व

6. **संगीत एवं संचार माध्यम**
   - विषयवस्तु
   - रेडियो में संगीत
   - टेलीविजन में संगीत
   - रेडियो तथा टेलीविजन का संगीत के प्रचार–प्रसार में भूमिका

7. **संगीत में अवनद्य वाद्य की भूमिका**
   - विषयवस्तु
   - संगीत का परिचय
   - संगीत के तत्व
   - संगीत के अवनद्य वाद्य
   - संगीत में अवनद्य वाद्यों का प्रयोग

8. **संगीत गोष्ठी**
   - विषयवस्तु
   - संगीत गोष्ठी का परिचय
   - संगीत गोष्ठी में कलाकार की भूमिका
   - विभिन्न प्रकार की संगीत गोष्ठी
   - संगीत गोष्ठी के श्रोता

उपरोक्त कुछ विषय आपके निबन्ध लेखन के अभ्यास के लिए दिए गए हैं। इन सभी विषयों पर आप निबन्ध लिखने का अभ्यास ऊपर अध्ययन कराई विधि के अनुसार करेंगे। सभी विषयों पर निबन्ध के अवयव का क्रम भूमिका, विषयवस्तु एवं उपसंहार रहेगा। उपसंहार एवं भूमिका के प्रभावशाली होने से आपका निबन्ध उच्चस्तर का होता है यद्यपि विषय वस्तु भी महत्वपूर्ण है। उपसंहार में विषय

वस्तु में की गई चर्चाओं अथवा विवरणों से प्रकट तथ्यों को परिणाम स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है। आप को इन सबका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप निबन्ध के माध्यम से दिया गया है। अतः उसी आधार पर आप उपरोक्त विषयों पर निबन्ध लेखन का अभ्यास करें।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निबन्ध लेखन की शैली से परिचित हो चुके होंगे। संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन की शैली एवं विद्या से आपको इस इकाई के माध्यम से परिचित कराया गया। निबन्ध लेखन से आप अपने विचारों को लेखन के माध्यम से प्रकट करने की तकनीक विकसित करते हैं जो बाद में आपको शोधपत्र, लेख एवं शोध कार्य में सहायक सिद्ध होगी। उदाहरण स्वरूप दिए गए संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन के विषय जान गए हैं एवं संगीत विषय पर लिखने में सक्षम होंगे। संगीत के गहन अध्ययन एवं संगीत के सन्दर्भों के अध्ययन से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो गए होंगे।

3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, *निबन्ध संगीत*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इकाई में दिए गए अभ्यास हेतु निबन्ध विषयों में से किसी एक विषय पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 1 – पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत(तोडों सहित) को लिपिबद्ध करना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े
1.3.1 राग मियाँ मल्हार
1.3.2 राग मालकौंस
1.3.3 राग मुल्तानी
1.3.4 राग तोड़ी
1.3.5 राग दरबारी
1.3.6 राग बसन्त
1.3.7 राग परज
1.3.8 राग शंकरा
1.4 सारांश
1.5 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के तृतीय खण्ड की पहली इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन से आप पाठ्यक्रम के रागों से परिचित हो चुके होंगे। आप संगीतज्ञों के जीवन से भी परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोडों को प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई में आपकी सुविधा के लिए मसीतखानी गत की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप मसीतखानी गत तथा तोड़ों को लिपिबद्ध कर सकेंगे और इन्हे पढ़कर क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

1. मसीतखानी गत को स्वरलिपि के माध्यम से पढ़ एवं बजा सकेंगे।
2. स्वर को लिपिबद्ध कर सकेंगे तथा लिपिबद्ध स्वर को पढ़ सकेंगे।
3. तोड़ों के माध्यम से राग का प्रस्तार कर सकेंगे।
4. अन्य रागों में भी तोडे बनाने में सक्षम होंगे।

1.3 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े

1.3.1 राग मियाँ मल्हार :–

आलाप :–

1. सा, नि़ म़ प़, नि़ ध़ नि़ सा, रे म रे सा।
2. म रे प, म प ग़ ग़ म रे, सा, नि़ ध़ नि़ सा।
3. नि़ सा, म रे प, म प, नि़ म प, ग़ ग़ म रे, सा।
4. नि़ प म़ प़, नि़ ध़ नि़ सा, रे प म प, ग़ ग़ म रे, सा।
5. रे रे प, म प, नि़ प म प, नि़ ध नि़ प, नि़, म प, ग़ ग़ म रे, सा, नि़ ध़ नि़ सा।
6. म रे प, म प नि़ ध नि, सां, नि़ म प, नि़ ध नि सां
7. नि़ म प, नि़, ध नि सां, रें रें सां, नि़ ध़ नि सां, नि़ प, ग़ ग़ म रे, सा।
8. म प, नि़ ध नि सां, नि़ ध नि, सां, रें रें सां गं़ गं़ मं रें रें सां, नि़ ध नि सां, सां नि़ म प ग़ ग़ म रे सा, नि़ म़ प़ नि़, ध नि सा।

मसीतखानी गत – (तीनताल)

स्थाई

											गम	रे	सासा	नि	मप़
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
नि़	निनि़	सा	निसा	रे	रे	प	मप	गम	रे	सा,	मम	रे	पप	ग	मरे
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा,	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
नि़	रे	सा	निसा	रे	रेरे	प	मप	ग	रे	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

अन्तरा

											मम	रे	पप	नि	नि
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सां	सां	सां	गंमं	रे	निसा	नि	प	गम	रे	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लय

1.		निधनिसा	मपनिध	निनिसा–	निनिसा–	निधनिसा	निधनिसा	निधनिसा	मुखडा
		2				0			
2.	निधधनिसा	रेसानिसा	गममरेसा	निधनिसा	निपपमप	गमरेसा	रेपग–	मरेसा–	मुखडा
		2				0			
3.		गगमम	रेसानिसा	रेपगग	मरेनिसा	रेरेपप	मपनिप	निनिपप	गमरेसा
		2				0			
	–निधनि	सां––नि	धनिसां–	–निधनि	नि	तिहाई			
	3				×				

तोडे – छःगुन लय

4.	गगगमममम	रेरेरेसानिसा	रेरेरेपपप	निनिनिपमप	
	2				
	निनिनिधधध	निनिनिसासासा	निनिनिपपप	गगगमरेसा	
	0				
	नि–धनि–सा	नि––नि–ध	नि–सानि––	नि–धनिऽसा	नि़ तिहाई
	3				×

तोडे – अठगुन लय

5. | नि़धनि़सारेसानि़सा | रेपमपगमरेसा | मपनि़धनि़पमप | नि़धनिसारेंसांनिसां |
×
| गंमंगंमंरेंसांनिसां | रेंरेंसारेंनिसांनि़प | सांसांनि़धनिसारेंसां | नि़निसारेंनिसांनि़प |
2
| नि़निमपगमरेसा | मपनि़धनिसांनि़प | मपगमरेसानि़सा | नि़–––मपनि़ध |
0
| निसांनि़पमपगम | रेसानि़सानि़––– | मपनि़धनिसांनि़प | मपगमरेसानि़सा | नि़ |
3 ×

6. | नि़नि़धनि़नि़धनि़सा | रेरेसारेरेसानि़सा | ममरेममरेसारे | नि़नि़पनि़नि़पमप |
×
| रेंरेंसारेंरेंसांनिसां | मंमंरेमंमंरेंसारें | नि़नि़पनि़नि़पमप | ममरेममरेसारे |
2
| मपनि़धनिसारेंसां | निसारेंपनि़सांमप | गमरेसारेसानि़सा | नि़सारेनि़धनि़सा– |
0
| पपमपगमरेसा | नि़–––पपमप | गमरेसानि़––– | पपमपगमरेसा | नि़ |
3 ×

7. | नि़सारेनि़सारेनि़सा | मरेपमरेपमप | नि़मपनि़मपनि़ध | निसारेंनिसारेंनिसां |
×
| मंमंमरेंसांनिनिसां | रेंरेंरेंसांनि़धनिसां | निनिनिसारेंसांनिसां | नि़निनि़धनि़पमप |
2
| मममपगमरेसा | मममपनि़धनिसां | नि़पमगमरेनि़सा | नि़–––ममप |
0
| निधनिसांनि़पमग | मरेनि़सानि़––– | मममपनि़धनिसां | नि़पमगमरेनि़सा | नि़ |
3 ×

8. | रे–रेमरेपमप | म–मरेपपमप | नि़–नि़धनि़पमप | सां–सांनि़धधनिसां |
×
| रें–रेंसारेंसांनिसां | मं–मंरेंसांसांनिसां | नि़–नि़धनिसारेंसां | प–पमगमरेसा |
2
| नि़–नि़धनि़सारें | नि़–रेसानि़रेसा | नि़––––––– | नि़–नि़धरेसानि़सा |
0
| नि़–रेसानि़–रेसा | नि़––––––– | नि़–नि़धरेसानि़सा | नि़–रेसानि़–रेसा | नि़ |
3 ×

1.3.2 राग मालकौंस :–

आलाप :–

1. ध़ नि़ सा, नि़ ग सा, सा ग नि़ सा।
2. ध़ म़ ध़ नि़ सा ग म ग सा।
3. ध़ नि़ सा ग म, ध़ ग म म।
4. ग म सा ग नि़ सा ग म।
5. ग म नि़ ध़ ग म, ध़ ग म ग सा।

6. ग नि़ सा ग ध़ नि़ सा म ग सा।
7. ग म ध नि सां, ध नि सां मं।
8. गं सां, नि सां गं मं गं सां, नि सां गं ध, म म ध नि सां।
9. नि ध म, ग म ध ग म ग सा ग म ग सा, ध़ नि़ सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

											गम	ग	सासा	नि़	सा
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
म	म	म	ग	म	धनि	ध	म	ग	ग	सा	मम	ग	सासा	नि़	ध़
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
म़	ध़	नि़	सा	म	धनि	ध	म	ग	ग	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

अन्तरा

											मम	ग	मम	ध	नि
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सां	सां	सां	गंमं	गं	सासा	नि	ध	म	गम	गसा	गम	ग	सा	नि़	सा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लय

1. | मऽमम गमगसा नि़नि़साऽ धनि़साऽ | गमधध गमगऽ नि़गसाऽ मुखडा
   2   0
2. | धधमध ममगम सागमध गमगसा | नि़सागसा सागमग म—मम मुखडा
   2   0

तोडे – छ:गुन लय

3. | गगगमम गगगसासासा नि़सागसानि़स धनि़सानि़साग | गगम——— गगम——— गगगम—— मुखडा
   2   0
4. | गगममगध ममधधमनि धनि़सानि़सानि़ सानि़धनि़धम |
   2
   | धमगसानि़सा नि़सागसागम नि़सागसागम नि़सागमसागम | तिहाई)मुखड़ा
   0

5. ### तोडे – अठगुन लय

   | गगममगमगसा धधमधमगमसा धनिनिधनिनिमध सानिधमगमगसा |
   2
   | गममगममगम गममगममगम गममगममगम मुखड़ा |
   0

1.3.3 राग मुलतानी :–

आलाप :–

1. सा, नि़ सा ग, रे सा, म॑ ग, रे सा, सा नि़ ध़ प़, नि़ सा।
2. सा नि़, प़ नि़ सा, ग म॑ ग रे सा, ग म॑ प, म॑ प ग, म॑ प, ग रे सा।
3. नि़ सा, म॑ ग म॑ प, ध म॑ प, ग म॑ प ध म॑ प, नि ध प, म॑ प ध, म॑ प, ग म॑ ग रे सा।
4. ग म॑ ग प, म॑ प, नि ध प, ध प म॑ प, ग म॑ प, म॑ ग, रे सा।
5. प म॑ ग, म॑ प, नि ध प, नि सां, गं रें सां नि सां, प नि सां गं, रें सां, नि ध प, म॑ ग रे सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

											पप	म॑	गरे	सा	गम॑
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
प	प	प	गम॑	प	निध	प	म॑म॑	ग	रे	सा,	गरे	सा	निध	प़	निनि
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सा	सा	सा	गम॑	प	निध	प	म॑म॑	ग	रे	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

अन्तरा

											म॑म॑	ग	म॑म॑	प	निनि
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सां	सां	सां	निसां	नि	धध	प	म॑म॑	ग	रे	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लय

1	नि़सानि़ध़	प–निसा	गम॑पम॑	ग–रेसा	गम॑प–	निधप–	गम॑ग–	रे–सा–	
	×				2				
	ग–रे–	सा–ग–	रे–सा–	मुखडा					
	0								
2	नि़साग–	रेसागम॑	प–म॑प	धपम॑–	गम॑पनि	–धप–	म॑गरे–	सा–म॑ग	
	×				2				
	–रेसा–	म॑ग–रे	सा–––	मुखड़ा					
	0				3				
3	नि़सागम॑	गरेसा–	गम॑पम॑	ग–म॑प	धपम॑प	ग–म॑प	निधप–	गम॑पम॑	
	×				2				
	ग–रेसा	नि़सागम॑	प–गम॑	प–नि़सा	गम॑प–	गम॑प–	नि़सागम॑	प–गम॑	प
	0				3				×
4	गगरेसा	नि़सागम॑	पपम॑ग	सागम॑प	निनिधप	म॑पनिसां	गंगंरेंसां	निनिधप	
	×				2				
	म॑गरेसा	पपम॑ग	रेसागम॑	प–,गम॑	रेसानि़सा	गम॑प–	गगरेसा	नि़सागम॑	प
	0				3				×

तोडे – छःगुन लय

5.	निसागसागमं	पमंगमंगग	मंपनिपनिसां	गंगंरेंसांरेंसां	
	×				
	रेंरेंरेंसांनिध	सांसांसांनिधप	निनिनिधपमं	धधधपमंग	
	2				
	पपपमंगरे	सारेसानिधप	पनिनिधपमं	मंधधपमंग	
	0				
	सा–निसागमं	प––सा–नि	सागमंप–––	सा–निसागमं	प
	3				×

1.3.4 राग तोडी :–

आलाप :–

1. सा, रे ग, रे सा, ध नि सा, रे ग रे सा।
2. सा नि ध नि सा, रे ग मं ग, रे ग रे सा, ध नि सा।
3. ग रे सा रे ग, मं ध, प मं ग रे ग, रे सा।
4. ध नि सा रे ग, मं ग, मं ध प, मं ग रे ग, रे सा।
5. सा रे ग, रे ग मं ध नि, ध प मं ग, ध मं ग रे ग रे सा।
6. ग रे ग मं ध, नि ध मं ग रे ग, ध प मं ग रे ग रे सा।
7. मं ग, मं ध, नि सां, ध नि सां, नि सा नि ध प मं ग रे ग मं ग, रे ग रे सा।
8. ग मं ध, मं ध नि सां, रें गं रें सा, नि ध नि सां, ध नि सा रें गं, रें गं मं गं रें ग रे सा, नि ध, मं ध प, मं ग रे ग, रे सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

															गग दिर
रे	सानि	ध	सारे	ग	ग	ग	रेग	मं	धध	प	मंग	रे	गरे	सा,	गरे
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा,	दिर
3				×				2				0			
ग	मंमं	प	मं	ध	नि	नि	धप	मं	धप	मं	ग	रे	गरे	सा	
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	
3				×				2				0			

अन्तरा

															मंमं दिर
ग	ममं	ध	नि	सां	सां	सां	रेंगं	रें	सांनि	ध	पमं	ग	रे	सा,	
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	
3				×				2				0			

तोडे – चौगुन लय

1.	सारेगरे	सांनिधनि	सारेगरे	सानिधनि	सा–सानि	धनिसा–	सानिधनि	स–	मुखड़ा
		2				0			

2. | गरेसारे | गमंधप मंधनिध पमंगरे सानि़धनि़ | सा—धनि़ सा—धनि़ सा——— मुखडा |
2 0

3. | गगरेसा नि़सारेग मंमंगरे सारेगमं | धधपमं गमंधनि गंगंरेंसां निनिधप |
× 2

| मगरेसा मंमंगरे सारेगेर ग—,मंमं | गरेसारे गरेग— मंमंगरे सारेगरे | ग
0 3 ×

4. | गगरेग गरेगमं धधपध धपमंध | निनिधनि निधमंध गंगंरेंगं गरेंसारें |
× 2

| सांनिधनि धपमंग मंधपमं गगरेसा | धनि़सारे ग—धनि़ सारेग— धनि़सारे | ग
0 3 ×

5. | गगरेमं मंगधध पमनिनि धपसांसां | निधगंगं रेंसांनिनि धपमंध निसारेंसां |
× 2

| निधपमं गरेसारे —सारे ग—गरे | सारेग— सारेग— गरेसारे ग—सारे | ग
0 3 ×

तोडे – छः गुन लय

6. | सारेसारेगरे गमगमंधप धमधनिधनि सांनिसारेंगरें |
×

| गंगरेंसारेंसां रेंरेंसांनिसांनि सांसांनिधनिध निनिधनिधनि |
2

| मंगरेसानि़ध़ नि़सारेगसारे ग————— मंगरेसानि़ध़ |
0

| नि़सारेगसारे ग————— मंगरेसानि़ध़ नि़सारेगसारे | ग
3 ×

तोडे – अठगुन लय

7. | सनिधनि़सारेसा— गरेसानि़सारेग— मंगरेसारेगमं— धपमंगमंधनि— |
×

| सानिधपमंधसां— गरेंसांनिधनिसां— निसारेंसांधनिसांनि धनिसांनिधनिधप |
2

| मंधनिधपमंगमं गमंधपमंगरेग सारेगमंधनिसारें सांनिधपमंगरेसा |
0

| मंधपमंगरेसारे ग———मंधपमं गरेसारेग——— मंधपमंगरेसानि | ग
3 ×

1.3.5 राग दरबारी :—

आलाप :—

1. सा, नि़ सा रे, ध़ नि़ प, ध़ नि़ सा, सा ध़ नि़ रे सा।
2. सा, रे रे सा, ध़ नि़ सा रे, ग, म रे सा, ध़ नि़ सा।
3. रे रे सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे रे ग, म रे, सा।
4. सा रे ग, म प ध, नि प, म प, नि प ग रे सा।
5. नि़ सा रे ग, म प, ध, नि सां, ध, नि प, म प ग, म रे सा।
6. सा रे ग, म रे, म प ध, नि प म प, ध नि प, म प ध नि सां नि सां रें, ध नि सां, ध नि प, ग ग म रे सा।

7. नि सा रे, ध, नि सा रे ग, म प, म प ध, नि सां, रें गं, मं रें सां रें रें, सां, रें, ध नि प, म प ध नि सां, ध नि प, ग म रे सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

											रेरे	सा	निनि	सा	रे
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
ध	नि	प	मप	ध	निनि	सा	रे	गम	रे	सा,	गम	रे	सासा	नि	सा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
रे	रे	सा	निसा	ध	निनि	सा	रे	गम	रे	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

अन्तरा

											मम	प	धध	नि	ध
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सा	सा	सा	गंमं	रे	सासा	धनि	प	गम	रे	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	रा					
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लय

1. गमरेसा निसारेसा धनिसारे गमरेसा | निपमप गमरेसा धनिरेसा मुखडा
   2 0
2. निसारेसा | धनिरेसा गगगम रेरेरेसा निपमप | गमरेसा गमरेसा गमरेसा मुखडा |
   2 0
3. | ममपग मरेसा– निसारेसा धनिप– | धनिसारे निरेसा– धनिसा– –निसारे |
   2 0
   | ध––– –निसारे ध––– –निसारे ध तिहाई |
   3 ×
4. | सा रेरे नि सा ध निनि सा रे ग मम रे सा म पप ध नि |
   ×
   | प धध नि सां ध निनि सां रें गं मंमं रें सा नि पप म प |
   2
   | ग मम रे सा म पप म म रे सासा नि सा ध – म पप |
   0
   | ग मम रे सा नि सासा ध – म पप ग मम रे सा नि सा | ध |
   3 ×

तोडे – अठगुन लय

5. | रेरेसारेरेसानिसा गमरेगमरेसारे मपधनिपपमप धनिसांधनिसांनिसां |
   ×
   | रेंरेंसारेंरेंसानिसां गंमंरेंगंमंरेंसारें धनिपधनिपमप गमरेगमरेसारे |
   2
   | धनिसाधनिसारेसा ममरेगमरेनिसा रेरेसानिसारेनिसा ध–––मरेग |
   0

मरेनिसारेरेसानि	सारेनिसाध–––	ममरेगमरेनिसा	रेरेसानिसारेनिसा	ध
3				×

6.	गमगमरेसानिसा	मपमपगमरेसा	धनिधनिमपगम	निसानिसारेसानिसा
×				

गंमंगमरेंसांनिसां	रेंरेंरेंसानिसारेंसां	सांसांसांनिधनिपप	निनिनिधनिपमप
2			

धधधनिपपमप	मममगमरेगम	रेरेरेसानिसारेसा	गगगमरेसानिसा
0			

ध–ध–ध–––	गगगमरेनिसा	ध–ध–ध–––	गगगमरेसानिसा	ध
3				×

1.3.6 राग बसन्त :–

आलाप :–

1. मं ध रें सां, नि सा नि ध प, मं ध नि ध प, मं ग, मं ग रे सा।
2. सा म ग म मं म ग, मं ध नि मं ध रें सां, नि ध मं ध सा।
3. नि ध प मं प मं ग, ग मं नि ध मं ग मं ग रे सा।
4. सा म म मं म ग, मं ध रे, नि ध, मं ध रें सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

रें	सा	सा	निध	प	पमं	ग	मं	ग	रे	सा,	पप	मं	गग	मं	ध
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
रें	सा	सा	म	मं	म	ग	मं	ग	रे	सा	गरे	निध	प	मं	ध
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
×				2				0				3			

अन्तरा

रें	सां	सां	मंगं	रें	सासा	नि	ध	प	मंग	रेसा	धध	म	ग	मं	ध
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
											पप	मं	गग	मं	ध
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लय

1.	मंधनिध	पऽमंप	मंगमंग	रेंसांनिसां	मंधरेंरें	सांऽनिसां	निधपऽ	मुखडा
2					0			

2.	रेंसांनिसां	निधपऽ	पऽमंप	मंगरेसा	सामममं	गऽमंग	मंधरेंसां	मुखडा
2					0			

तोडे – छःगुन लय

3. | पपमंपमंग मंगरेसानिसा सामममंमग मंधनिधनिरें | गरेंसारेंसांनि सांनिधनिधप मंधरेंरेंसाऽ मुखडा
   2 0

4. **तोडे – अठगुन लय**
   | सागमंगमंगरेसा मंधमंधनिधपप मंगमंगरेसानिसा सामऽमऽममंग |
   2
   | मंधमंधरेरेसांऽ निधपऽमंगरेसा धरेंसांऽनिनिसाऽ मुखड़ा
   0

1.3.7 राग परज :–

आलाप :–

1. सा, नि़, ध़ नि रें़ सां, नि़ सा नि़..... रे़ ग रे़ सा –
2. नि़, ग रे़ ग, रे़ ग मं़, मं़ ग, रे़ सा नि़, रे़ सा।
3. नि़, रे़ ग मं़, ग, मं़ प ऽ ग म ग, मं़ ग रे सा।
4. मं़ ध़ नि सां ऽ ऽ नि ध़ नि, ग मं़ ध़ नि, सां रें़ नि सां नि ध़ नि, नि रें़ गं ऽ रें़ सा नि ध़ नि, मं़ ध़ (सा) नि ध़ नि ऽ ध़ प ऽ ग म ग, मं़ ग रे़ सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

मं़	धध	नि	सांनि	सां	नि	नि	धध	प	मंमं	ग	मंध	मं़	गरे़	सा,	पप दिर
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	निसा दिर
ग	मग	मं़	धध	प	पप	मं़	मं़	ध़	निनि	ध़	मंध	मं़	गरे़	सा,	
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	
3				×				2				0			

अन्तरा

प	मंमं	ध़	निसां	नि	नि	सां	निरें	गं	रेंसां	नि	धप	मं़	गरे़	सा,	मंमं दिर
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	गंगं दिर
रें	सांसां	रें	निध	नि	धध	प	मंध	नि	धध	प	मंध	मं़	गरे़	सा,	
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	
3				×				2				0			

तोडे – चौगुन लय

1. | नि़सागमं़ पमंपगमं़ गरेसासा गमंपध़ | मंपगमं़ धनिधप मंधनिसां निधपमं़ |
   2 0
   धपमंप मंगरेसा गमंपध़ मंधनिसां | नि
   3 ×

2. | गगरेनि़ रेगमंप धधपमं़ धनिसांनि | सांनिधनि सांनिधप मंगरेसा मुखड़ा |
   2 0

3. | मंगमंप धपमंप निधपमं सांनिधप | निधपमं धपमंग पमंग– मुखड़ा
3 ×

तोडे – छःगुन लय

4. | गमंगमंपमं धपधपमंप मधनिधपमं धनिसांरेंसांनि |
2
| गंरेंसांनिधप रेंसांनिधपमं सांनिधपमंग निधपधपमं |
0
| पमंगमंधध नि––पमंग मंधधनि–– पमंगमंधध | नि
3 ×

5. | गमंरेसानिसा मंमंगरेगमं पपमंगमंध निनिधमंधनि |
×
| रेंरेंसांनिसांनि गेंरेंसांरेंसांनि सांनिधनिधप मंगरेसानिसा |
2
| गगरेमंमंग पमंगमंधध नि––––– गगरेमंमंग |
0
| पमंगमंधध नि––––– गगरेमंमंग पमंमंधधध | नि
3 ×

तोड़े – अठगुन लय

6. | गगरेसानिरेगमं मंमंगरेसगमंप पपमंगरेगरेगमंप धधपमंगमंपध |
2
| निनिधपमंधनिसां गंगंरेंसांनिनिधप मंमंगमधसांनिसां नि–––मंमंगमं |
0
| धसांनिसांनि––– मंमंगमंधसांनिसां गंगंरेंसांनिनिधप मंमंगमधसांनिसां | नि
3 ×

7. | मंमंगमंमंगरेसा पपमंपपमंगरे धधपधधपमंग निनिधनिनिधपमं |
×
| संसंगंरेंसांनिधप निनिरेंरेंनिधपमं धधसांसांनिधपमं पमंगमंगरेसासा |
2
| पपमंगमंधप– मधपधमंधनिसां नि––––––– पपमंगमंधप– |
0
| मंधपधमंधनिसां नि––––––– पपमंगमंधप मंधपधमंधनिसां | नि
3 ×

1.3.8 राग शंकरा :–

आलाप :–

1. सा ग प, प ग प रें ग सा, ग प नि ध सां नि प।
2. नि ध सां नि प, ग प सां नि प, सा ग प नि ध सां।
3. सां गं पं रें गं सां, नि ध सां नि प, प ग प रें ग सा।

मसीतखानी गत
स्थाई

											निसां	नि	पप	गप	निसां
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
नि	नि	प	पप	ग	गग	प	गप	(रे)ग	ग	सा,	नि़सा	नि़	प़प़	नि़	सा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा,	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
ग	ग	सा	पप	ग	गग	प	गप	(रे)ग	ग	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा,					
3				×				2				0			

अन्तरा

											पप	ग	पप	नि	नि
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सां	सां	सां	गंपं	गं	गं	सा	गप	ग	ग	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
3				×				2							

तोडे – चौगुन लय

1. | पऽपप गपगसा नि़प़नि़सा गगसाऽ | प पप ग प गरेसाऽ निऽसाऽ मुखडा
   (2 … 0)
2. | नि़प़नि़नि़ साऽसाऽ गपगरे साऽसाऽ | निधसाऽ निपगप गरेसाऽ मुखड़ा
   (2 … 0)
3. | सासागग पऽपप गगपऽ गरेसाऽ | नि़प़नि़सा गरेसाऽ गरेसाऽ मुखडा
   (2 … 0)

तोडे – छःगुन लय

4. | प़प़प़नि़नि़नि़ सासासागगसा गगगपपप गपगरेसाऽ |
   (2)
   | गपनिधसांऽ निपगरेसाऽ प़प़नि़नि़सा‍ऽ मुखड़ा |
   (0)
5. | सासागगपप गगरेरेसाऽ नि़प़नि़सागसा पपगपगसा |
   (2)
   | सानिपनिपग सानिपनिपग सानिपनिपग तिहाई, मुखडा |
   (0)
6. | गगगगरेसा निनिनिनिपग सासासासानिप गगगरेसाऽ |
   (2)
   | गपनिधसांऽ गपनिधसांऽ गपनिधसांऽ तिहाई, मुखडा |
   (0 … ×)

तोड़े – अठगुन लय

7. | प़नि़प़नि़सारेनि़सा नि़सानि़सागगप गगपऽगरेसाऽ पपगपगरेसाऽ |
   (2)
   | निधसांनिनिनिनिप निधसांनिनिनिप निधसांनिनिनिप तिहाई, मुखड़ा |
   (0)

अभ्यास प्रश्न

---

1. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में मसीखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप मसीतखानी गत की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से वादन करने में सक्षम होंगे। फिरोज खाँ के पुत्र मसीत खाँ ने सितार वादन की एक शैली को विकसित किया जिसे मसीतखानी शैली कहते हैं। इसमें बजाई जाने वाली राग रचनाएँ मसीतखानी गत कहलाती हैं। पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत दी गई हैं। इन रागों का तोडों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तोड़ों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे।

1.5 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जैन, डा0 वीणा, सेनिया घराना और सितार वादन शैली, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. डा0 गौरी, तन्त्री वाद्य सितार एवं वादनीय बंदिशें, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. राय, वी0एस0 सुदीप, जहान–ए–सितार, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
4. भटनागर, डा0 रजनी, सितार वादन की शैलियां, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
5. Mahajan, Prof. Anupam, Compositions in Instrumental Music, Sanjay Prakashan, Delhi.

1.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं तीन रागों में मसीतखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 2 – पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत(तोडों सहित) को लिपिबद्ध करना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े
  2.3.1 राग मियाँ मल्हार
  2.3.2 राग मालकौंस
  2.3.3 राग मुल्तानी
  2.3.4 राग तोड़ी
  2.3.5 राग दरबारी
  2.3.6 राग बसन्त
  2.3.7 राग परज
  2.3.8 राग शंकरा
2.4 सारांश
2.5 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.6 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप मसीतखानी गत के बारे में जान चुके होंगे। आप मसीतखानी गत को लिपिबद्ध करना भी सीख चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोडों को प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई में आपकी सुविधा के लिए रजाखानी गत की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप रजाखानी गत तथा तोड़ों को लिपिबद्ध कर सकेंगे और इन्हे पढ़कर क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

1. रजाखानी गत को स्वरलिपि के माध्यम से पढ़ एवं बजा सकेंगे।
2. स्वर को लिपिबद्ध कर सकेंगे तथा लिपिबद्ध स्वर को पढ़ सकेंगे।
3. तोड़ों के माध्यम से राग का प्रस्तार कर सकेंगे।
4. अन्य रागों में भी तोड़े बनाने में सक्षम होंगे।

2.3 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े

2.3.1 राग मियाँ मल्हार :–

रजाखानी गत – तीनताल

स्थाई

								ग	म	रे	सा	–	नि़	म़	प़
								दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ
नि	–	–	ध़	नि	नि़	सा	सा,	रे	रे	प	प	नि	ध	नि	सां
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ
नि	प	म	प	ग	म	रे	सा								
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ								
×				2				0				3			

अन्तरा

								म	म	प	प	नि	ध	नि	नि
								दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ
सा	–	सा	सा	नि़	रे	सा	सां	गं	मं	रें	सां	नि	नि	म	प
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ
नि	–	–	ध़	नि	नि	सा	सा,								
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ								
×				2				0				3			

तोड़े (4 मात्रा) :–

1 | निप मप गम रेसा |
0

2 | मम पप गम रेसा |
0

3 | पग मप गम रेसा |
0

तोड़े (8 मात्रा) :–

4 | गम रेसा नि़सा रेसां | निध़ नि़नि़ सारे नि़सा |
× 2

5 | गग मम रेरे सासा | निप मप गम रेसा |
× 2

6 | रेप मप गम रेसा | प– गम रेसा नि़सा |
× 2

7 | निसां रेंसां निप मप | रेप गम रेसा नि़सा |
× 2

8 | रेप मप गम रेसा | पग मप गम रेसा |
× 2

9 | निध़ नि़नि़ सारे नि़सा | रेप मप गम रेसा |
× 2

तोड़े (16 मात्रा) :–

10	नि़ध़	नि़सा	रेसा	नि़सा	रेप	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	रेप	मप	नि़ध़	नि़सा	मप	गम	रेसा	नि़सा	
	×				2				
11	मम	रेप	मप	निध	निसां	रेंसां	निध	निसां	
	0				3				
	रेंरें	सांरें	निसां	निध	निसां	निप	गम	रेसा	
	×				2				

तोड़े (32 मात्रा) :–

12	रेरे	सारे	रेसा	नि़सा	मम	रेम	मरे	नि़सा	
	×				2				
	निनि	पनि	निप	मप	मम	रेरे	सारे	नि़सा	
	0				3				
	निप	मप	गम	रेसा	नि़–	––	निप	मप	
	×				2				
	गम	रेसा	नि़–	––	निप	मप	गम	रेसा	नि़
	0				3				×
13	रेम	रेम	रेसा	नि़सा	मप	मप	निप	मप	
	×				2				
	निसां	निसां	रेंसां	निसां	निध	निप	गम	रेसा	
	0				3				
	मप	मप	गम	रेसा	नि–	––	मप	मप	
	×				2				
	गम	रेसा	नि़–	––	मप	मप	गम	रेसा	नि़
	0				3				×
14	पप	गम	रेसा	निनि	मप	गम	रेसा	सांसां	
	×				2				
	निध	निसां	निप	मप	निप,	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	नि़–	रेसा	नि़–	––	मप	गम	रेसा	नि़–	
	×				2				
	रेसा	नि़–	––	मप	गम	रेसा	नि़–	रेसा	नि़
	0				3				×
15	मम	गम	रेसा	नि़सा	पप	मप	गम	रेसा	
	×				2				
	निनि	मप	निध	निसां	निसां	रेंमं	रेंसां	निसां	
	0				3				
	गंमं	रेंसां	निध	निसां	निप	मप	गम	रेसा	
	×				2				
	रेसा	नि़सा	नि़–	रेसा	नि़सा	नि़–	रेसा	नि़सा	नि़
	0				3				×

16 | सारें सांनि सांनि धनि | पम गम रेप मप |
× 2
| निध निसां रेंसासं निसां | निम पग मरे सा– |
0 3
| रेप मग मरे नि़सा | नि़– –– रेप मग |
× 2
| मरे नि़सा नि़– –– | रेप मग मरे नि़सा | नि़ |
0 3 ×

2.3.2 राग मालकौंस :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

सा नि़ ध़ सा	– नि़ सा ग	म – म म	ग म ग सा
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
ध़ –ध़ नि सा	– सा ग मग	म – म म	ग म ग सा
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
0	3	×	2

अन्तरा

म म ग ग	म म ध नि	सां – सां गं	सां नि सां सां
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
नि सां गं मं	ग सां नि ध	म – म म	ग म ग सा
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
0	3	×	2

तोडे (8 मात्रा) :–

1 | नि़सा गम धनि सांनि | धम गंम गसा नि़सा |
× 2
2 | गम धनि सांनि धम | सांनि धम गम गसा |
× 2
3 | मग मध निसां गंसां | धनि धम गम गसा |
× 2
4 | मध निध निसां निध | मध मग मग सा– |
× 2

तोडे (12 मात्रा) :–

5 | गसा नि़सा मग साग | धम गम सांनि धनि |
3 ×
| सांनि धम गसा नि़सा |
2 0
6 | मम गम गम धनि | सांसां निध मध निसां |
3 ×
| निनि धम गम नि़सा |
2 0

तोडे (16 मात्रा)

7	सानि	साग	मग	मध	निध	मध	निसां	गंसां	
	0				3				
	निसां	धनि	मध	गम	धनि	धम	गम	गसा	
	×				2				
8	निसा	गम	साग	मध	गम	धनि	मध	निसां	
	0				3				
	गंसा	निसां	धनि	धम	गम	धम	गम	गसा	
	×				2				

तोडे (32 मात्रा)

10	निसा	गनि	साग	मग	मध	निम	धनि	सांनि	
	×				2				
	धनि	सांध	निसां	निसां	निध	मग	मग	सा–	
	0				3				
	निध	मनि	धम	गग	म–	––	निध	मनि	
	×				2				
	धम	गग	म–	––	निध	मनि	धम	गग	
	0				3				
11	मम	गम	गसा	निसा	निनि	धनि	धम	गम	
	×				2				
	गग	सांनि	धनि	सां–	धध	मध	धम	गम	
	0				3				
	धम	गम	गसा	निसा	म–	––	धम	गम	
	×				2				
	गसा	निसा	म–	––	धम	गम	गसा	निसा	
	0				3				

2.3.3 राग मुल्तानी :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

मं	गग	रे	सा	नि	सा	ग	मं	प	–	ग	मं	ग–	गरे	–रे	सा
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
ग	मंमं	प	नि	सां	निनि	ध	प	मं	प	ग	मं	ग–	गरे	–रे	सा
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
0				3				×				2			

अन्तरा

प	प	ग	मं	प	प	नि	नि	सां	–	सां	गं	रें	सां	नि	सां
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
प	निनि	सां	गं	रें	सां	नि	सां	नि	ध	प	मं	ग–	गरे	–रे	सा
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
0				3				×				2			

तोड़े (4 मात्रा) :–

1	पनि	धप	म॑ग	रेसा
	2			
2	पध	पम॑	गरे	सासा
	2			

तोड़े (6 मात्रा) :–

3	गम॑	पनि	सांनि	धप	म॑ग	रेसा
			2			
4	पसां	निसां	पनि	धप	गम॑	प–
			2			

तोड़े (8 मात्रा) :–

5	ऩिसा	गम॑	पनि	सांनि	धप	म॑प	म॑ग	रेसा
	×				2			
6	गम॑	पनि	सांगं	रेंसां	निध	पम॑	गरे	सा–
	×				2			

तोड़े (16 मात्रा) :–

7	ऩिसा	गम॑	गम॑	पध	पनि	सांनि	सांगं	रेंसां
	0				3			
	निसां	निध	पध	पम॑	गम॑	पम॑	गरे	सा–
	×				2			

तोड़े (32 मात्रा) :–

8	गरे	साऩि	साग	रेसा	पम॑	गम॑	पध	पम॑	
	×				2				
	गम॑	पनि	धप	म॑प	गम॑	पग	म॑ग	रेसा	
	0				3				
	ऩिसा	गम॑	पम॑	गम॑	प–	––	ऩिसा	गम॑	
	×				2				
	पम॑	गम॑	प–	––	ऩिसा	गम॑	पम॑	गम॑	प
	0				3				×
9	गग	गग	रेसा	ऩिसा	निनि	निनि	धप	म॑प	
	×				2				
	गंगं	गंगं	रेंसां	निसां	निध	पम॑	गग	रेसा	
	0				3				
	गग	रेसा	ऩिसा	गम॑	प–	––	गग	रेसा	
	×				2				
	ऩिसा	गम॑	प–	––	गग	रेसा	ऩिसा	गम॑	प
	0				3				×
10	म॑म॑	गम॑	म॑ग	रेसा	पप	म॑प	पम॑	गम॑	
	×				2				
	गंगं	रेंरें	सांसां	निनि	धप	म॑प	म॑ग	रेसा	
	0				3				

	पप	मंप	गमं	गमं	प–	––	पप	मंप	
	×				2				
	गमं	गमं	प–	––	पप	मंप	गमं	गमं	प
	0				3				×

तोड़े (48 मात्रा) :–

11	गमं	गप	मंप	धप	मंप	मंध	पध	मंप	
	×				2				
	निसां	निध	पध	मंप	सांनि	सांगं	रेंसां	निसां	
	0				3				
	निध	पध	मंप	निसां	गमं	पमं	धमं	पनि	
	×				2				
	सांनि	धप	मंप	धप	गमं	पमं	गरे	सा–	
	0				3				
	निध	पमं	प–	गमं	प–	––	निध	पमं	
	×				2				
	प–	गमं	प–	––	निध	पमं	प–	गमं	प
	0				3				×

2.3.4 राग तोड़ी :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

	ग	रे	सा	नि़	ध़	नि	सा	रे	ग	–	मं	ग	रे–	रेसा	–नि	सा
	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	–	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दा
	ध़	–	नि़	ध़	–	नि	सा	रे	गग	मंमं	ग	रे	ग–	सा–	नि़	सा
	दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दाऽ	राऽ	दा	रा
	0				3				×				2			

अन्तरा

	मं	मं	ग	मं	–	ध	नि	नि	सां	–	सां	सां	गं–	गंरें	–रें	सां
	दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दा
	गं	–	रें	सां	–	नि	ध़	प	ग	मंमं	पप	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा
	दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा
	0				3				×				2			

तोड़े (4 मात्रा) :–

1	धध	पमं	गग	रेसा	
	2				0
2	मंध	निमं	गरे	सासा	
	2				0

तोड़े (8 मात्रा) :–

3	नि़रे	गमं	धनि	सांनि	धम	मंग	रेग	रेसा
	×				2			

4 | गरे गमं धनि धमं | धमं गमं गरे सासा |
× 2

5 | गमं धमं रेग मंध | पमं गरे गरे सा– |
× 2

6 | निसां रेंध निसां मंध | निध मंग रेग रेसा |
× 2

तोड़े (12 मात्रा) :–

7 | गरे सारे मंग रेग | निध मंध सांनि धनि |
3 ×

| धमं गमं गरे सा– |
2 0

8 | सारे गरे गमं धमं | धनि सांनि रेंसां निसां |
3 ×

| निध मंग रेग रेसा |
2 0

9 | मंग रेसा रेग मंध | निध मंग मंध निसां |
3 ×

| निध पमं गरे सा– |
2 0

तोड़े (16 मात्रा) :–

10 | सानि़ धनि़ धनि़ सारे | रेसा नि़सा नि़सा रेग |
0 3

| गरे सारे सारे गमं | पमं गमं गरे सा– |
× 2

11 | गग रेसा मंमं गरे | धध मंग निनि धम |
0 3

| गंगं रेंसां निनि धमं | गमं गरे गरे सा– |
× 2

12 | गग रेसा रेसा नि़सा | निनि धमं धमं धनि |
0 3

| गंगं रेंसां रेंसां निसां | निनि धमं गरे सा– |
× 2

2.3.5 राग दरबारी कान्हड़ा :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

रे रे सा ध़	– नि़ सा रे	ग – ग म	रे– रेसा –नि़ सा
दा रा दा रा	ऽ दा रा दा	दा ऽ रा ऽ	दाऽ रदा ऽरा दा
नि़ सा रे रे	ग – म प	ग – ग म	रे– रेसा –नि़ सा
दा रा दा रा	दा ऽ रा ऽ	दा ऽ दा रा	दाऽ रदा ऽरा दा
×	2	0	3

अन्तरा

म	म	प	ध	–	नि	सा	नि	सां	–	रें	रें	गं	मं	रें	सां
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	रा	दा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
नि	सां	रें	ध	नि	सां	नि	प	ग	–	ग	म	रे–	रेसा	–नि	सा
दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽरा	दा
×				2				0				3			

तोड़े (4 मात्रा) :–

1 | गम रेसा धनि सां |
2

2 | मप धनि पम गम |
2

3 | पनि मप गम रेसा |
2

तोड़े (6 मात्रा) :–

4 निप मप | गम रेसा धनि रेसा |
2

5 मप धनि | प– मप गम रेसा |
2

तोड़े (8 मात्रा) :–

6 | सारे ग– मप ध– | निप मप गम रेसा |
× 2

7 | सारे गम प– मप | धनि पम गम रेसा |
× 2

8 | मप धनि सा– धनि | प– मप गम रेसा |
× 2

तोड़े (16 मात्रा) :–

9 | धनि सारे गम रेसा | मप धनि सांरें निसा |
0 3

| धनि प– मप गम | रेसा निसा धनि सा– |
× 2

10 | गम रेसा मप धनि | सांरें सां– निसां रेंसां |
0 3

| धनि सांरें निसां निप | मप गम रेसा निसा |
× 2

11 | निसा रेंसां धनि मप | धनि सांध निप मप |
0 3

| मप धनि पग मरे | प– गम रेसा निसा |
× 2

तोड़े (32 मात्रा) :–

12 | गम गम रेसा निसा | मप मप गम रेसा |
× 2

| धनि सांध निप मप | गम गम रेरे सा– |
0 3

	गम	रेसा	रे–	सारे	ग–	––	गम	रेसा	
	×				2				
	रे–	सारे	ग–	––	गम	रेसा	रे–	सारे	ग
	0				3				×
13	धनि	साध	निसा	रेसा	पध	निप	धनि	मप	
	×				2				
	निसा	रेंनि	सारें	निसां	धनि	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	मप	धनि	सां–	सारे	ग–	––	मप	धनि	
	×				2				
	सां–	सारे	ग–	––	मप	धनि	सां–	सारे	ग
	0				3				×
14	सारे	सारे	गम	प–	मप	मप	धनि	सां–	
	×				2				
	निसां	निसां	धनि	प–	मप	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	सारे	सारे	ग–	सारे	ग–	––	सारे	सारे	
	×				2				
	ग–	सारे	ग–	––	सारे	सारे	ग–	सारे	ग
	0				3				×

2.3.6 राग बसन्त :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

										मं	ग	मं	–	ध	
										दा	रा	दा	ऽ	रा	
रे	–	सा	–	नि	ध	प	–	ग	मं	ग	मं	ग	रे	–	सा
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दा	रा	दा	ऽ	रा
म	–	म	मं	मं	मं	ग	–	रे	रे	सा,	मं	ग	मं	–	ध
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दा	रा	दा	ऽ	रा
×				2				0				3			

अन्तरा

								मं	ग	मं	ध	रे	रे	सा	–
								दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ
नि	ध	प	–	ग	मं	ग	–	रे	रे	सा,	मं	ग	मं	–	ध
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा					
×				2				0				3			

तोड़े (सम से 4 मात्रा बाद) :–

1	मंग	मंध	रेंरें	साऽ	मंग	रेरे	सा–	मुखडा
2	रेंसां	निसां	निध	प–	मंमं	धध	सा–	मुखडा

3 | गम धध मंध रेंरें | सांनि धप मंग मुखडा |

तोडे (सम से) :–

4 | गमं धध मंध निनि | धध रेरे साऽ निसा |
| पमं गरे गऽ मुखडा |

सम से (मुखडे कि तिहाई) :–

5 | मंध पमं गमं गरे | सा– गमं ग– गमं |
| ग– गमं ग– मुखडा |

6 | रेंसा निसां मंग मंग | रेसा निसा साम –म |
| गमं गऽ रेसा मुखडा |

7 | सानि रेंसां पमं धप | सानि रेंसा गमं धध |
| मंध रेरे साऽ मुखडा |
0 3

2.3.7 राग परज :–

रजाखानी गत

स्थाई

प मं ग मं	– ध नि सां	नि – ध प	मं प ग म
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
नि़ रे ग मं	प मं ध प	मं ध नि सां	नि ध प मं
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
0 3 × 2

अन्तरा

मं ग म ध	मं ध नि सां	नि – ध प	मं मं ग मं
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
ध नि रें नि	– ध मं ध	नि ध प मं	ग रे सा –
दा रा दा रा	ऽ दा दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
0 3 × 2

तोडे (8 मात्रा) :–

1 | निध पमं धप मंप | गम गरे नि़रे सा– |

2 | सांनि धनि धप मंप | निध पमं गरे सा– |

3	धनि	सांनि	ध॒प	म॑प	ध॒प	म॑प	मग	रे॒सा

तोडे (16 मात्रा) :–

4	निरे॒	गम॑	पम॑	पध॒	म॑ध॒	निसां	निध॒	पम॑
	म॑ध॒	निध॒	निसा	निध॒	पम॑	गम॑	गरे	सा–
5	गरे॒	गम॑	पध॒	निध॒	निध॒	पम॑	गम	स–
	म॑ध॒	निसां	नि–	म॑ध॒	निसां	नि–	म॑ध॒	निसां

तोडे (32 मात्रा) :–

6	नि–	सांनि	रें॒सा	निसां	नि–	ध॒प	म॑प	ध॒प
	म॑ध॒	निसां	रेरे	सांनि	ध॒नि	ध॒प	म॑ध	पम॑
	गरे॒	सा–	गम॑	ध॒नि	सां–	नि–	गरे॒	सां–
	ध॒नि	सां–	नि–	गरे॒	गम॑	ध॒नि	सां–	नि–

2.3.8 राग शंकरा :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

											ग	प	नि	ध	सां
											दा	ऽ	दा	रा	रा
नि	–	प	–	ग	ग	प	–	ग	–	सा,	नि़	प़	नि़	–	सां
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	दा,	दा	ऽ	दा	रा	रा
ग	–	सा	–	गप	निसा	निप	गप	गरे	सानि़	सा,					
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	दा,					
0				3				×				2			

अन्तरा

ग	ग	प	–	नि	नि	सां	–	गं	गं	पं	–	गं	–	सां	–
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	ऽ	रा	रा
नि	ध	सां	–	नि	–	प	–	गप	गरे	सा					
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा					
0				3				×				2			

तोड़े (सम से 4 मात्रा बाद)

1	निध	सांऽ	निप	गऽ	गप	गरे	साऽ	मुखडा
2	सासा	गग	पप	निध	निप	गप	गऽ	मुखडा
3	नि़सा	गऽ	साग	पऽ	गप	गरे	साऽ	मुखडा

4 | सांनि सांसां निप गप | गप गरे साऽ मुखडा |

5 | पनि साग रेसा निप | गग पऽ नि़सा मुखडा |

6 | पसां निरें सांनि धप | गप निनि साऽ मुखडा |

तोडे (सम से) :–

7 | सासा गग पप गप | गप गरे सानि साऽ |
| पनि सारे साऽ मुखडा |

8 | नि़सा गसा गप गप | निसा गरे सानि साऽ |
| रेंसां निरें साऽ मुखडा |

9 | सानि़ साग पऽ गप | पनि सांगं रेंसां निसां |
| गप निध साऽ मुखडा |

10 | सानि रेंसां पमं धम | सानि़ रेंसा गमं धध |
| मंध रेरे साऽ मुखडा |

अभ्यास प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रजाखानी गत की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से वादन करने में सक्षम होंगे। पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत दी गई हैं। इन रागों का तोडों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तोडों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे।

2.5 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जैन, डा0 वीणा, सेनिया घराना और सितार वादन शैली, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. डा0 गौरी, तन्त्री वाद्य सितार एवं वादनीय बंदिशें, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. राय, वी0एस0 सुदीप, जहान–ए–सितार, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
4. भटनागर, डा0 रजनी, सितार वादन की शैलियां, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
5. Mahajan, Prof. Anupam, Compositions in Instrumental Music, Sanjay Prakashan, Delhi.

2.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं तीन रागों में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 3 – पाठ्यक्रम की तालों का परिचय एवं उनको लयकारी(दुगुन, तिगुन व चौगुन) सहित लिपिबद्ध करना।

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 तालों का परिचय, स्वरूप एवं लयकारियाँ
  3.3.1 आडाचारताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियाँ
  3.3.2 दीपचंदी ताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियाँ
  3.3.3 झूमरा ताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियाँ
  3.3.4 सूलताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियाँ
  3.3.5 तीवरा ताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियाँ
3.4 सारांश
3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम(बी0ए0एम0आई0–301) के तृतीय खण्ड की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी व रजाखानी गतों को तोडों सहित लिपिबद्ध करना भी सीख गए होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी(दुगन, तिगुन व चौगुन) में लिपिबद्ध करने के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने के विषय में जान सकेंगे। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- विभिन्न लयकारीयों को जान सकेंगे।
- तबले की ताल के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध कर पाएंगे।
- ताल व उनकी लयकारीयों को समझ कर आप अपने गायन/वादन को अधिक प्रभावशाली बनाने में सक्षम होंगे।

3.3 तालों का परिचय, स्वरूप एवं लयकारियाँ

3.3.1 अडाचारताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियां :–

परिचय – आडाचारताल चौदह मात्रा की तबले पर बजने वाली ताल है जिसका प्रयोग विलम्बित एवं मध्य लय में किया जाता है। एकताल की भांति अति विलम्बित लय में इसका प्रयोग नहीं होता है। इसमें गायन एवं वाद्यों पर मुख्य रूप से मध्यलय की रचना ही गाई व बजाई जाती है। चारताल पखावज पर बजाने वाली बारह मात्रा की ताल है परन्तु आडाचारताल का पखावज पर बजने वाली ताल से कोई सम्बन्ध नहीं है यद्यपि नाम से सम्बन्ध का भ्रम होता है। इसमें एकल वादन भी तबला वादकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसका स्वरूप मध्य लय में ही स्थापित होता है। द्रुत एवं अति द्रुत लय में प्रायः इस ताल का प्रयोग नहीं किया जाता है। चौदह मात्रा की ही तबले पर बजने वाली अन्य तालें झूमरा ताल, दीपचन्दी ताल एवं कैद फरोदस्त ताल हैं। इनका स्वरूप एवं ताल संरचना आडाचारताल एवं एक–दूसरे से भिन्न है एवं इन तालों का संगीत में प्रयोग भी भिन्न रूप में होता है। यही समान मात्रा की तबले पर बजने वाली भिन्न तालों का औचित्य भी है।

स्वरूप – मात्रा – 14, विभाग – 7, ताली – 1, 3, 7 व 11 पर, खाली – 5, 9 व 13 पर

ठेका

धिं	तिरकिट	धिं	ना	तू	ना	क	ता	तिरकिट	धि	ना	धि	धि	ना	धिं
×		2		0		3		0		4		0		×

लयकारियाँ – समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होने वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है।

लय सामान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई हैं– विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय। काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम होने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। सामान्य रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता है एवं द्रुत लय का विश्रांति समय मध्य लय के विश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार करने की आवश्यकता होगी। अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। लय का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारीयां जैसे दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, कुआड़, एवं बिआड़ प्रयोग की जाती हैं।

दुगुन – एक मात्रा में दो मात्रा — 1 2 1 2

तिगुन – एक मात्रा में तीन मात्रा — 1 2 3 123

चौगुन – एक मात्रा में चार मात्रा — 1234 1234

दुगुन, तिगुन एवं चौगुन की लयकारी को क्रमशः दो बार, तीन बार एवं चार बार प्रयोग किया जाता है।

आडाचारताल की दुगुन :–

धिंतिरकिट	धिंना	तूना	कता	तिरकिटधि	नाधि	धिना	धिंतिरकिट
×		2		0		3	
धिंना	तूना	कता	तिरकिटधि	नाधि	धिना	धिं	
0		4		0		×	

आडाचारताल की दुगुन एक आवर्तन में – 7 मात्रा की होगी एवं आठवीं मात्रा से आरम्भ कर सम पर आएगी।

धिंतिरकिट	धिंना	तूना	कता	तिरकिटधिं	नाधिं	धिंना	धिं
	0		4		0		×

आडाचारताल की तिगुन :–

धिंतिरकिटधिं	नातूना	कतातिरकिट	धिनाधि	धिनाधिं	तिरकिटधिंना	तूनाक	तातिरकिटधि
×		2		0		3	
नाधिधि	नाधिंतिरकिट	धिनातू	नाकता	तिरकिटधिना	धिधिना	धिं	
0		4		0		×	

आडाचारताल की तिगुन एक आवर्तन में – $\mathbf{\frac{14}{3} = 4\frac{2}{3}}$ मात्रा की होगी एवं $9\frac{1}{3}$ मात्रा के बाद आरम्भ होकर सम पर आएगी।

ऽधिंतिरकिट	धिनातू	नाकता	तिरकिटधिंना	धिंधिंना	धिं
	4		0		×

आडाचारताल की चौगुन :–

धिंतिरकिटधिंना	तूनाकता	तिरकिटधिनाधि	धिनाधिंतिरकिट	धिंनातूना	कतातिरकिटधि
×		2		0	
नाधिधिना	धिंतिरकिटधिंना	तूनाकता	तिरकिटधिनाधि	धिनाधिंतिरकिट	धिंनातूना
3		0		4	
कतातिरकिटधि	नाधिधिना	धिं			
0		×			

आडाचारताल की चौगुन एक आवर्तन में – $\mathbf{\frac{14}{3} = 4\frac{2}{4}}$ मात्रा की होगी एवं $11\frac{2}{4}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

11	12	13	14	
ऽऽधिंतिरकिट	धिनातूना	कतातिरकिटधिं	नाधिंधिंना	धिं
4		0		×

3.3.2 दीपचन्दी ताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियां :–

परिचय – दीपचन्दी ताल को चांचर के नाम से भी जाना जाता है। मुख्यतः इसका प्रयोग उपशास्त्रीय संगीत या सुगम संगीत में किया जाता है। इस कारण ये ताल तबले के साथ–साथ ढ़ोलक, नाल, नक्कारा आदि अवनद्ध वाद्यों पर भी बजाया जाता है। दीपचन्दी ताल में अधिक वादन सम्भव न होने के कारण इसका प्रयोग एकल वादन हेतु नहीं किया जाता है। इसका वादन तीनों लयों – विलम्बित, मध्य व द्रुत लय में किया जाता है। उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत इसका मुख्य प्रयोग होली व विलम्बित लय के ठुमरी गायन की संगति के लिए किया जाता है। इस ताल में लग्गी–लड़ी का प्रयोग बहुतायत में होता है।

यह चौदह मात्रा की ताल है। 14 मात्राएं 3/4/3/4 विभाग में विभाजित हैं। अतः इसे मिश्र जाति की अर्द्ध समपदीय ताल कहते हैं। इसमें पहला एवं तीसरा विभाग तीन–तीन मात्रा एवं दूसरा एवं चौथा विभाग चार–चार मात्रा का है। पहली, चौथी एवं ग्यारवीं मात्रा पर ताली एवं आठवीं मात्रा पर खाली है।

स्वरूप – मात्रा – 14, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 11 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ	धा
×			2				0			3				×

लयकारियां :–

दीपचन्दी ताल की दुगुन :–

धाधिं	ऽधा	धातिं	ऽता	तिंऽ	धाधा	धिंऽ	धाधिं	ऽधा	धातिं	ऽता	तिंऽ	धाधा	धिंऽ	धा
×			2				0			3				×

दीपचन्दी ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धाधिं	ऽधा	धातिं	ऽता	तिंऽ	धाधा	धिंऽ	धा
0			3				×

दीपचन्दी ताल की तिगुन :–

धाधिंऽ	धाधातिं	ऽतातिं	ऽधाधा	धिंऽधा	धिंऽधा	धातिंऽ	
×			2				
तातिंऽ	धाधाधिं	ऽधाधिं	ऽधाधा	तिंऽता	तिंऽधा	धाधिंऽ	धा
0			3				×

दीपचन्दी ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

1धाधिं	ऽधाधा	तिंऽता	तिंऽधा	धाधिंऽ	धा
	3				×

दीपचन्दी ताल की चौगुन :–

धाधिंऽधा	धातिंऽता	तिंऽधाधा	धिंऽधाधिं	ऽधाधातिं	ऽतातिंऽ	धाधाधिंऽ	
×			2				
धाधिंऽधा	धातिंऽता	तिंऽधाधा	धिंऽधाधिं	ऽधाधातिं	ऽतातिंऽ	धाधाधिंऽ	धा
0			3				×

दीपचन्दी ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

12धाधिं	ऽधाधातिं	ऽतातिंऽ	धाधाधिंऽ	धा
3				×

3.3.3 झूमरा ताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियां :–

परिचय – यह तबले का ताल है। इस ताल की संरचना दीपचन्दी की भांति है परन्तु इस ताल का प्रयोग दीपचन्दी से भिन्न है। झूमरा ताल का प्रयोग शास्त्रीय गायन के विलम्बित ख्याल के साथ किया जाता है। इस ताल का प्रयोग विलम्बित लय में ही किया जाता है। मध्य एवं द्रुत लय में इस ताल के प्रयोग का प्रचलन नहीं है। एकल वादन का प्रचलन इस ताल में नहीं है किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार पुराने तबला वादकों द्वारा इसमें कभी–कभी स्वतन्त्र वादन भी प्रस्तुत किया गया है।

यह मिश्र जाति की अर्द्ध समपदीय ताल है। इसकी 14 मात्राएं 3/4/3/4 विभागों में बँटी हैं। इसमें पहला एवं तीसरा विभाग तीन–तीन मात्रा एवं दूसरा एवं चौथा विभाग चार–चार मात्रा का है। पहली, चौथी एवं ग्यारहवीं मात्रा पर ताली एवं आठवीं मात्रा पर खाली है।

स्वरूप – मात्रा – 14, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 11 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धिं ऽधा तिरकिट	धिं धिं धागे तिरकिट	तिं ऽता तिरकिट	धिं धिं धागे तिरकिट	धिं
×	2	0	3	×

लयकारियां :–

झूमरा ताल की दुगुन :–

धिंऽधा	तिरकिटधिं	धिंधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धिंधिं	धागेतिरकिट	
×			2				
धिंऽधा	तिरकिटधिं	धिंधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धिंधिं	धागेतिरकिट	धिं
0			3				×

झूमरा ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धिंऽधा	तिरकिटधिं	धिंधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धिंधिं	धागेतिरकिट	धिं
0			3				×

झूमरा ताल की तिगुन :–

धिंऽधातिरकिट	धिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽता	तिरकिटधिंधिं	धागेतिरकिटधिं	ऽधातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिट	
×			2				
तिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागे	तिरकिटधिंऽधा	तिरकिटधिंधिं	धागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिट	धिं
0			3				×

झूमरा ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

1धिंऽधा	तिरकिटधिंधिं	धागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिट	धिं
	3				×

झूमरा ताल की चौगुन :–

धिंऽधातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिंधिं		
×				
धागेतिरकिटधिंऽधा	तिरकिटधिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागेतिरकिट	
2				
धिंऽधातिरकिटधिं	धिंधागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधिंधिं		
0				
धागेतिरकिटधिंऽधा	तिरकिटधिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागेतिरकिट	धिं
3				×

झूमरा ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

12धिंऽधा	तिरकिटधिंधिंधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धिंधिंधागेतिरकिट	धिं
3				×

3.3.4 सूलताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियां :–

परिचय – इसे सूलफाक अथवा सूलफाक्ता के नाम से भी जाना जाता है। पं0 विजयशंकर मिश्र ने अपनी पुस्तक तबला पुराण में लिखा है – " मोहम्मद करम इमाम ने सूलताल को अमीर खुसरो द्वारा रचित 17 तालों में से एक माना है, आचार्य बृहस्पति ने अदन उल मूसीकी नामक पुस्तक के आधार पर इस ताल का नाम उसूले–फाख्ता दिया है, जो बाद में बिगड़कर सूलफाख्ता हो गया। उसूल का अर्थ सिद्धान्त होता है और फाख्ता पंडुक(गुलगुचया) नामक चिड़िया को कहते हैं। लोगों का मत है कि इस चिड़िया की बोली के आधार पर इस ताल की रचना हुई है। फाख्ता की बोली कुछ इस प्रकार होती है – कू ऽ ऽ ऽ कू ऽ कू ऽ ऽ ऽ "

यह पखावज पर बजाई जाने वाली प्रमुख तालों में से एक है। मुख्यतः इसका वादन मध्य व द्रुत लय में होता है। गायन में ध्रुपद शैली की मध्य लय की रचनाओं व वादन में वीणा के साथ संगति में इसका प्रयोग होता है। पखावज में इस ताल में एकल वादन भी प्रस्तुत किया जाता है।

यह चतस्त्र जाति की सम पदीय ताल है। इसकी मात्राओं की संख्या 10 है, जो पाँच विभागों में बँटी है। इसके प्रत्येक विभाग में दो–दो मात्राएं हैं। एक, पांच एवं सातवीं मात्रा पर ताली एवं तीसरी तथा नौवीं मात्रा पर ताली है।

स्वरूप – मात्रा – 10, विभाग – 5, ताली – 1, 5 व 7 पर, खाली – 3 व 9 पर

ठेका

धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कता	गदी	गिन	धा
×		0		2		3		0		×

लयकारियां :–

सूलताल की दुगुन :–

धाधा	दिंता	किटधा	तिटकता	गदिगन	धाधा	दिंता	किटधा	तिटकता	गदिगन	धा
×		0		2		3		0		×

सूलताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धाधा	दिंता	किटधा	तिटकता	गदिगन	धा
	3		0		×

सूलताल की तिगुन :–

धाधादिं	ताकिटधा	तिटकतागदि	गनधाधा	दिंताकिट	धातिटकता
×		0		2	
गदिगनधा	धादिंता	किटधातिट	कतागदिगन	धा	
3		0		×	

सूलताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

12धा	धादिंता	किटधातिट	कतागदिगन	धा
3		0		×

सूलताल की चौगुन :–

धाधादिंता	किटधातिटकता	गदिगनधाधा	दिंताकिटधा	तिटकतागदिगन	धाधादिंता
×		0		2	
किटधातिटकता	गदिगनधाधा	दिंताकिटधा	तिटकतागदिगन	धा	
3		0		×	

सूलताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

12धाधा	दिंताकिटधा	तिटकतागदिगन	धा
	0		×

3.3.5 तीवरा ताल का सम्पूर्ण परिचय, स्वरूप एवं लयकारियां :–

परिचय – इसे तीव्रा या तेवरा नाम से भी जाना जाता है। कुछ विद्वान इसे गीतांगी भी कहते हैं। वैसे तो यह पखावज के महत्वपूर्ण तालों में से एक है किन्तु इसे तबले पर भी बजाया जाता है। तीवरा ताल की संरचना रूपक ताल की भांति है। यह दक्षिण भारतीय संगीत की मिश्र जाति के त्रिपुट ताल के समान है। पखावज पर एकल वादन में तथा गायन में इसका प्रयोग ध्रुपद शैली की मध्य एवं द्रुत लय की रचनाओं के साथ किया जाता है। इसमें परन, टुक्ड़े, तिहाईयाँ आदि रचनाएं बजाई जाती हैं। तबले पर इसका प्रयोग ध्रुपद अंग की गायकी के साथ खुले अंग के रूप में किया जाता है। इसे विलम्बित लय में प्रयोग करने का प्रचलन नहीं है।

यह एक विषमपदीय ताल है। इसमें 7 मात्राएं होती हैं जो 3/2/2 – कुल 3 विभागों में बँटी होती हैं। पहले विभाग में तीन तथा दूसरे व तीसरे में दो–दो मात्राएं होती हैं। इसकी पहली, चौथी व छठी मात्रा पर ताली होती है। इसमें खाली नहीं होती है।

स्वरूप – मात्रा – 7, विभाग – 3, ताली – 1, 4 व 6 पर

ठेका

धा	दीं	ता	तिट	कत	गदि	गन	धा
×			2		3		×

लयकारियां :–

तीवरा ताल की दुगुन :–

धादीं	तातिट	कतगदि	गनधा	दींता	तिटकत	गदिगन	धा
×			2		3		×

तीवरा ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

1धा	दींता	तिटकत	गदिगन	धा
2		3		×

तीवरा ताल की तिगुन :–

धादींता	तिटकतगदि	गनधादीं	तातिटकत	गदिगनधा	दींतातिट	कतगदिगन	धा
×			2		3		×

तीवरा ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

12धा	दींतातिट	कतगदिगन	धा
	3		×

तीवरा ताल की चौगुन :–

धादींतातिट	कतगदिगनधा	दींतातिटकत	गदिगनधादीं	तातिटकतगदि	गनधादींता	तिटकतगदिगन	धा
×			2		3		×

तीवरा ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

1धादींता	तिटकतगदिगन	धा
3		×

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. आडाचारताल का सम्पूर्ण परिचय दीजिए।
2. झूमरा ताल की दुगुन, तिगुन व चौगुन लयकारी लिपिबद्ध कीजिए।
3. दीपचंदी ताल का सम्पूर्ण परिचय दीजिए।

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. आडाचारताल की ....., ... व ..... मात्रा पर खाली है।
2. चांचर को ..... ताल के नाम से भी जाना जाता है।
3. ..... ताल का प्रयोग प्रायः विलम्बित लय में ही किया जाता है।
4. सूलताल ..... अवनद्ध वाद्य पर बजाई जाने वाली ताल है।
5. तीवरा ताल दक्षिण भारतीय संगीत की मिश्र जाति के ..... ताल के समान है।

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों को ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी(दुगन, तिगुन व चौगुन) में लिपिबद्ध करने के विषय में जान चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप लयकारी को भली–भांति समझ चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप तबले की ताल के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध कर सकेंगे। ताल व उनकी लयकारीयों को समझ कर आप अपने गायन/वादन को अधिक प्रभावशाली बनाने में सक्षम हो सकेंगे।

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. 5, 9 व 13 **2.** दीपचन्दी ताल 3. झूमरा ताल **4.** पखावज 5. त्रिपुट

3.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किन्हीं तीन तालों का पूर्ण परिचय देते हुए उनके ठेकों को दुगुन, तिगुन व चौगुन सहित लिपिबद्ध कीजिए।